

पूज्य संत
श्री आशारामजी बापू

ब्रह्मज्ञान से ओतप्रोत, रोचक, मधुर

संत-मिलन के संस्मरण

श्री घाटवाले बाबा

श्री अखंडानंदजी सरस्वती

श्री नारायण
स्वामी

श्री लालजी
महाराज

ब्रह्मज्ञान से ओतप्रोत, रोचक, मधुर

संत मिलन के संस्मरण

संत सुंदरदास जी ने कहा है: "भगवान के दर्शन करने पर भी संदेह पूर्णरूप से नष्ट नहीं होगा किंतु भगवान की कथा सुनने से भगवान में श्रद्धा बढ़ती है और उसकी अपेक्षा भी भगवत्प्राप्त महात्माओं का जीवन-चरित्र एवं सत्संग पढ़ने तथा सुनने से भक्ति का प्राकट्य शीघ्र हो जाता है (सर्व संदेह नष्ट हो जाते हैं)।"

संतों, गुरुजनों की हर अदा, हर लीला मानव जाति के लिए प्रेरणास्वरूप बन जाती है। संत महापुरुष हमारे बीच रहते हुए, पग-पग पर विघ्न-बाधाओं को सहते हुए और उनका निराकरण करते हुए, हमारे जैसे लिखते-पढ़ते, खाते-पीते, लेते-देते, हँसते-रोते भगवत्प्राप्ति की यात्रा करते हैं।

स्वामी विवेकानंदजी कहते थे: "बारह कोस चलकर जाने से भी यदि सत्पुरुष के दर्शन होते हों तो मैं पैदल चल के जाने के लिए तैयार हूँ क्योंकि ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुष के दर्शन से कैसा आध्यात्मिक लाभ मिलता है वह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"

निरिच्छ पद में पहुँचे हुए महापुरुष भी अन्य ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों से मिलने वह उनकी जीवन-लीलाओं पर आधारित सत्साहित्य को पढ़ने सुनने में रुचि रखते हैं। रंग अवधूत जी महाराज से पूछा गया कि "महाराज जी ! अब आप ज्ञातज्ञेय हैं, ज्ञानी हैं तो अभी आपको किस बात की रुचि है ?"

वे बोले: "दो बातें, एक किसी महात्मा के जीवन-चरित्रवाली पुस्तक हो तो अभी भी पढ़ने की रुचि रहती है और कोई महात्मा आये हों तो उनको भोजन खिलाने की भी रुचि रहती है।" संत ज्ञानेश्वर महाराज, संत नामदेव जी, एकनाथ जी महाराज, मुक्ताबाई आदि ब्रह्मचर्या करते थे। हाथी बाबा, हरि बाबा, उड़िया बाबा, आनंदमयी माँ आपस में मिलते थे तो ज्ञानचर्या करते थे। ऐसे ही स्वामी विवेकानंद जी, स्वामी अखंडानंद जी, परमहंस योगानंद जी, स्वामी राम (देहरादून वाले) भी अपने समकालीन अनेक ब्रह्मज्ञानी संतों से मिलते, उनसे परस्पर ज्ञानचर्या करते थे। पूज्य बापू जी जब अपने मित्रसंतों से मिलते तब ज्ञानभरा विनोद करते। ज्ञानचर्या के

दौरान इन महापुरुषों के श्रीमुख से जो ज्ञान प्रवाहित हुआ वह उनका सहज, स्वनिर्मित विनोद होता था लेकिन भक्तों के लिए वह बिना प्रयास, बिना तपस्या के सहज में ही ब्रह्मानंद से सराबोर कराने वाला सरल साधन बन गया।

संत मिलन सम सुख जग नार्हीं

सदैव सम और प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है।



ब्रह्मज्ञान से ओतप्रोत, रोचक, मधुर संत-मिलन के संस्मरण

Sant Milan Ke Sansmaran



प्राप्ति-स्थान : सभी संत श्री आशारामजी आश्रम व समितियों के सेवाकेन्द्र।

संत श्री आशारामजी आश्रम, संत श्री आशारामजी बापू आश्रम मार्ग,
साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५. दूरभाष : (०७९) ३९८७७३२.

सूरत, दूरभाष : (०२६१) २७७२२०१/२.

नई दिल्ली, दूरभाष : (०११) २५७२९३३८, २५७६४१६१.

गोरेगाँव (पूर्व), मुंबई-४०००६३. दूरभाष : (०२२) २६८६४१४३.

Visit : www.ashram.org

For online purchases : www.ashramstore.com

प्रकाशन-स्थल : हरि ॐ मैन्युफेक्चरर्स, मोटेरा,

साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५ (गुजरात)

मुद्रण-स्थल : हरि ॐ मैन्युफेक्चरर्स, कुंजा मतरालियों,

पौंटा साहिब, सिरमौर (हि.प्र.)-१७३०२५

पृष्ठ संख्या : ९६ आकार : १३५ मि.मी. X २१० मि.मी.

संस्करण : प्रथम प्रतियाँ : १५०००

मूल्य : ₹ १५
(पन्द्रह रुपये)

मेरे गुरु महान...

किसी नदी को समुद्र के संगम के निकट निहारने वालों को शायद ही खयाल आता होगा कि यह शांत, सौम्य, सुखी, सरिता कभी तो पर्वत के ऊपर से नीचे बहती हुई, पत्थरों से

टकराती हुई, मार्ग में अनेक अवरोधों को सहन करती हुई, सतत् पुरुषार्थ करती हुई, साहसपूर्ण, एकाकी कदम आगे बढ़ाती हुई, हृदय में आशा का तंतु बाँधती हुई आखिर में समुद्र-मिलन के उसके महान ध्येय तक पहुँच सकी है। ठीक उसी प्रकार विश्वप्रसिद्ध संत श्री आशाराम जी बापू, जिन्होंने आज परब्रह्म-परमात्मरूपी महासागर में संगम-आत्मैक्य कर लिया है, वे भी कभी **'परथम पहेलुं मस्तक मूकी, वळती लेवुं नाम जोने. संत दारा शीश समरपे, ते पामे रस पीवा जोने.'** (पूर्णता को प्राप्त संत प्रीतमदास जी का यह वचन है कि अपने पुत्र-परिवार, धन-सम्पदा आदि सहित अपने शीश यानी अपने देहाभिमान को भी परमात्मा को, सदगुरु को समर्पित करने की तैयारी रखो फिर पूर्ण ज्ञान की, परमात्मप्राप्ति की अपेक्षा करना। ऐसे शूरवीर साधक को ही भगवद्-रस पीने का सौभाग्य प्राप्त होता है।)- ऐसे अटल निश्चय को हृदय में धारण करके परमात्मप्राप्ति को ही अपने जीवन का ध्रुव लक्ष्य बनाकर अपनी माता, भाई-बहन, पत्नी आदि सभी को छोड़ के गुरु मिलन के उद्देश्य से निकल पड़े थे। आज अनेक आश्रमों, समितियों एवं सेवा-प्रवृत्तियों के मार्गदर्शक व प्रेरणास्थान तथा करोड़ों शिष्यों के सदगुरु पूजनीय संतशिरोमणि श्री आशाराम जी बापू को देखने वाले इसकी कदाचित् कल्पना भी न कर पायेंगे कि बापू जी अपनी साधनाकाल में किस प्रकार सदगुरु साँई श्री लीलाशाह जी के श्रीचरणों में पहुँचकर उनकी अग्निपरीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे। शिखर के जगमगाते हुए कलश के तेज को देखने वालों को शिखर की नींव के निर्माण में जो तपश्चर्या हुई है वह कहाँ दिख पाती है !

माता पिता के सुसंस्कार कहो या पूर्वजन्म की दैवी सम्पदा, छोटी उम्र में ही पूज्य बापू जी संसार की असत्यता को जानकर प्रभु-मिलन की तीव्र उत्कंठा के साथ केदारनाथ, वृंदावन जैसे तीर्थों में गये परंतु सच्चा मार्ग और मार्गदर्शक नहीं मिले। वन और गिरी-गुफाओं में घूमते-घूमते आखिर नैनिताल में ब्रह्मनिष्ठ संत भगवत्पाद लीलाशाह जी बापू के आश्रम में पहुँचे। उनके दर्शन करके ही पूज्य श्री को प्रतीति हो गयी कि अब मेरी खोज पूर्ण हो गयी ! पूज्यपाद लीलाशाह जी ने भी पूज्य श्री की तीव्र तड़प देखकर उन्हें शिष्यरूप में स्वीकार किया।

नैनिताल की पहाड़ी पर स्थित गुरु-आश्रम से प्रतिदिन सुबह पगडंडी से नीचे उतर के बाल्टियाँ भर के पानी लाकर पेड़-पौधों को सींचना, बाजार से दूध व सब्जियाँ लाना, बर्तन साफ करना, गुरु जी के आये हुए पत्रों को पढ़ना व गुरु जी द्वारा लिखवाये उत्तर लिखना, गुरु जी को शास्त्र पढ़कर सुनाना जैसी सारी सेवाएँ हँसते-हँसते तत्परता से पूज्य श्री ने अंगिकार कर लीं।

चार फीट की छोटी कुटिया पूज्य श्री को रहने के लिए दी गयी, जिसमें सीधे खड़े भी रहा जा सकता था. अंदर झुककर जाना पड़ता था। रात तो सोते समय पैर भी पूरे लम्बे नहीं कर सकते थे। मूँग की दाल उबाल कर खा के दिन बिताते थे। इतने कठोर परिश्रम के बाद भी ब्रह्मज्ञान पाने की तड़प थी तो आखिर संवत् 2021 आश्विन शुक्ल दूज के दिन दोपहर को ढाई बजे पूज्य लीलाशाह जी महाराज का हृदय करुणा कृपा से छलका और अपने प्रिय शिष्य को 'स्व' स्वरूप में प्रतिष्ठित करा के आत्मधन से इतना मालामाल कर दिया कि आज लाखों-करोड़ों

लोगों में बाँटने पर भी वह खजाना खूटता ही नहीं है। वास्तव में, अदभुत होता है सदगुरुओं का आत्मिक प्रसाद !

सच्चिदानंद परमात्मा के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान को हस्तामलकवत् करने वाले, जिस स्थिति में कुछ भी प्राप्त करना, त्याग करना अथवा भोगना शेष नहीं रहता उस स्थिति में विराजमान पूज्य बापू जी अपनी इस ऊँचाई का रहस्योद्घाटन करते हुए कहते हैं-

हम न हँसकर सीखे हैं, न रोककर सीखे हैं।

जो कुछ भी सीखे हैं, गुरु के होकर सीखे हैं॥

बापू जी ने अपने गुरुदेव के प्रति स्नेह, श्रद्धा एवं अहोभाव व्यक्त करते हुए जब भावविभोर हो जाते हैं तब अपने सदगुरु के महाप्रयाण के क्षणों में उनका मस्तक अपनी गोद में होने की घटना का अचूक स्मरण करते हैं और स्वयं को परम सौभाग्यशाली अनुभव करते हैं।

ऐसे सुहृदय, पूजनीय संत के जीवन-दर्शन द्वारा परब्रह्म-परमात्मा के साक्षात्कार का सौभाग्य सबको प्राप्त हो यही अभ्यर्थना !

श्रीचरणानुरागी

पाठकों के साथ संवाद

वर्तमान विश्व-संतशिरोमणि, करोड़ों-करोड़ों शिष्यों के सदगुरु, ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू का अवतरण समाज के प्रत्येक वर्ग के, प्रत्येक उम्र के लोगों में ईश्वरप्राप्ति की भूख जगाकर उन्हें अपने मनुष्य जीवन में सच्चे सुख, परम आनंद एवं अमिट शांति का सुफल प्राप्त कराने के लिए हुआ है। इसीलिए तो पूज्य श्री ने साधनाकाल में अपने यार भगवान के साथ मुहब्बत भरी अठखेली करते हुए उसे चुनौती दी कि "मुझे भले तुम्हें पाने के लिए खूब यत्न करने पड़ रहे हैं किंतु तू मुझे एक बार मिल जा, मैं तुम्हें सस्ता बना दूँगा।" और यह चुनौती आप श्री ने साकार कर के भी दिखायी।

स्वाभाविक ही है कि पूज्य बापू जी के सभी साधकों एवं विश्ववासियों को यह जानने की जिज्ञासा रहती है कि पूज्य बापू जी ने ब्रह्मज्ञान की प्यास में कहाँ-कहाँ भ्रमण किया, क्या-क्या उपासना-तपस्याएँ की, कैसे भक्ति, ध्यान व आत्मज्ञान में सराबोर रहे और कैसे ब्रह्मज्ञान पाया ? पूज्य श्री को ब्रह्मज्ञान पाने के लिए जीवन में कैसी-कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ? आपने कौन-कौन सी सिद्धियाँ पायीं ? साधना-क्षेत्र के मुक्त गगन में तीव्रतम गति से उन्नति की उड़ान भराने वाले कैसे-कैसे मार्ग, कैसी-कैसी प्रक्रियाएँ आपको प्राप्त हुई थीं ? यह सब जानने के लिए पूज्य बापू जी के मित्रसंतों के साथ मिलन-प्रसंग तथा उनके बीच का वार्तालाप अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

ब्रह्मनिष्ठ घाटवाले बाबा, योगसिद्ध नारायण बापू, संत लाल जी महाराज, पथिक जी महाराज जैसे मित्रसंतों के साथ बिताये हुए समय को बापू जी ने अपने जीवन का सुवर्णकाल बताया है और उन अनमोल संस्मरणों को कोई बार ताजा किया है। बापू जी व्यापक रूप से

समाज के बीच आये, उससे पहले की उनकी मधुमय यादगार यात्रा के सुनहरे पलों के कुछ अंश यहाँ साहित्य में प्रस्तुत कर रहे हैं। इन संस्मरणों के रसपान से यह सुस्पष्ट होगा कि संत-समागम की अनेक लौकिक-अलौकिक घटनाएँ पूज्य बापू जी को साक्षात्कार के लक्ष्य की ओर सतत अग्रसर करती रही हैं और परमात्मप्राप्ति के बाद भी पूज्य श्री के जीवन में समाधि-सुख से भी विलक्षण एवं विशेष ऐसा ब्रह्मानंद छलकाती रही हैं।

इस ग्रंथ का मुख्य उद्देश्य आपको बापू जी के जीवन-लीला प्रसंगों से प्रेरित करके आपके जीवन में ईश्वरप्राप्ति की रुचि व गुरु के प्रति निष्ठा बढ़ाना है। जिन प्रसंगों के पठन-मनन से अपने सदगुरु के प्रति प्रेमभाव एवं सुदृढ़ अहोभाव जागृत हों, अदीक्षित सज्जनों की ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषों के प्रति श्रद्धा-विश्वास के साथ निष्ठा बढ़े ऐसे प्रेरणादायक लीला-प्रसंग सभी के लिए अवश्य ही ईश्वरप्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होने की उत्तम कुंजीरूप साबित होंगे।

महाभारत में यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देते समय धर्मराज युधिष्ठिर ने बताया है:

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः।

'धर्म का तत्व गुहा में छिपा हुआ - अत्यंत गूढ़ है, अतः जिस मार्ग से महापुरुष गये हैं, वही मार्ग वास्तविक मार्ग है।'

इस प्रकार महापुरुषों के जीवन-प्रसंगों से जीवन पथ पर चलने का आदर्श मार्ग सुस्पष्ट हो जाता है।

अनुक्रमणिका

[पूज्य बापू जी का मित्रवृंद](#)

पूज्य बापू जी और पूज्य घाट वाले बाबा के साथ मिलन प्रसंग

- [घाट वाले बाबा का जीवन-परिचय](#)
- [महापुरुषों के अनुभव को अपना अनुभव बना लो](#)
- [ब्रह्मज्ञानी को ब्रह्मज्ञानी ही जानें](#)
- [संतों की मौज](#)
- [हृदयस्पर्शी बात](#)
- [मधुर विनोद](#)
- [विजानंद महाराज पर कृपा](#)
- [घाटवाले बाबा की शिष्या का ध्यान लगा](#)
- [साधु कैसे होने चाहिए ?](#)
- [दुराग्रह](#)
- [अनधिकारी के आगे....](#)
- [कोई आत्मसाक्षात्कार कराने वाला उपदेशक आया](#)
- [चौथ का चन्द्रमा देखा](#)

पूज्य बापू व संत लाल जी महाराज के मिलन-प्रसंग स्वयं पूज्य श्री के शब्दों में

- लाल जी महाराज का परिचय
- एक ही सब, सब ही एक
- बचपन का भोलापन
- अलौकिक रूप से वेदना-शांति
- दिव्य रूप से नेत्रज्योति आयी
- देवों के सहज दर्शन
- संत परम हितकारी
- इष्टसिद्धि की महिमा
- विशेष स्नेह
- साकार और निराकार की बात
- आत्मज्ञान के साथ विनोद भी भरपूर

लाल जी महाराज के श्रीमुख से पूज्य बापू जी का जीवन-दर्शन

- पूज्य बापू जी के साथ प्रथम मुलाकात
- मित्र हरगोविंद पंजाबी को पत्र
- पूज्य अम्मा जी आगमन
- वज्रेश्वरी में आत्मसाक्षात्कार
- सद्गुरु ने दिया नया नाम
- विनोदी स्वभाव
- परस्पर संयमी जीवन
- कैसा निर्लेप हृदय !

आत्मज्ञान से सराबोर पूज्य बापू जी के पत्र

पूज्य बापू और पूज्य नारायण बापू के साथ के मिलन-प्रसंग

- मन का प्रभाव तन पर
- हे भगवान ! दया कर...

पूज्य बापू जी के मित्रसंत पूज्य अखंडानंद सरस्वती जी के प्रेरक प्रसंग

- यह भजन का विघ्न है, इससे सावधान !
- दक्षिणा में माँ !
- हनुमान जी ने वरदान दिया
- संसारी मोह से छूटने की युक्ति बतायी

अन्य संतों के साथ मिलन-प्रसंग

- गंगोत्री के नरहरि महाराज

- [भूमानंद जी महाराज के साथ](#)
- [सद्गुरु-मिलन](#)
- [कानपुर के संत राणा जी के साथ](#)
- [वेदांत की डिग्री](#)
- [गंगोत्री के संत चेतनानंद जी](#)
- [चीलवासा के योगी को बतायी योग की अवस्था](#)
- [गंगा किनारे पर संत-मिलन](#)
- [गंगागिरि जी महाराज](#)
- [मुसलमान महिला फकीर](#)
- [एक मिनट में हजारों को ब्रह्मसुख की झलकें](#)
- [पवनाहारी बाबा](#)
- [नर्मदा-किनारे के संत](#)
- [स्वामी शिवानंद जी](#)
- [संतों के सद्गुण ले लो](#)
- [पथिक जी महाराज](#)
- [श्री आनंदमयी माँ](#)
- [बाबा जी माँ की बात मान गये.....](#)
- [स्वर्ग-सुख तो चिपक ही जायेगा](#)

[दादागुरु साँई श्री लीलाशाह जी महाराज का पूज्य श्री को पत्र](#)
[संत का संग एवं सेवन करें](#)

पूज्य बापू जी का मित्रवृंद

पूज्य बापू जी अपने मित्र संतों के संस्मरणों में कहते हैं-

"मेरे तीन-मुख्य मित्र संत थे। एक ऐसे मित्र थे कि उनकी बराबरी के मैंने कोई योगी नहीं देखे। एक मेरे ऐसे मित्र थे जो भक्ति की साक्षात् मूर्ति थे, उनके जैसे ईमानदारी से भक्ति करने वाले संत मैंने नहीं देखे। भक्तिमार्ग की पूरी यात्रा थी उनकी। तीसरे मेरे जो मित्रसंत थे। उनकी ज्ञानमार्ग की पूरी यात्रा थी। मैं किसी की प्रशंसा जल्दी नहीं करता हूँ। बहुत गहराई में जाने के बाद ही किसी के बारे में कुछ कहता हूँ। ये तीन मित्र संत थे। नारायण बापू (ताजपुर वाले), लाल जी महाराज (नारेश्वरवाले) और घाटवाले बाबा (हरिद्वार वाले)। हम लाल जी महाराज या घाटवाले बाबा को मिलते थे तो हमारी दोनों की बस, जोड़ी ही लगती थी। तीन मित्रसंतों में से किसी से भी मिलते तब हमारी जोड़ी बहुत ही जमती थी।

जैसे दो दीपक जलते हैं न, तो दोनों का प्रकाश घुल-मिल जाता है और विशेष प्रकाश जगमगाने लगता है, ऐसे ही हम घाटवाले बाबा से मिलते थे तो उनका आनंद विशेष रूप से छलकता और हमारा भी आनंद विशेष छलकता था। जैसे विष्णु जी और शिवजी परस्पर मिलते हैं तो कैसा विशेष आनंद छलकता है, ऐसे। वैसे तो अकेले में समाधि का आनंद होता ही है पर ऐसा आनंद नहीं। उन महापुरुष की तो लेटे सोते जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते समाधि-ही-समाधि थी लेकिन जब हमारे बीच ब्रह्मज्ञान की चर्चा होती थी तब ब्रह्मानंद विशेष छलकता था। उस समय तो हमारा लाल-लाल टमाटर जैसा मुखमंडल था और काले घुँघराले बाल थे, बड़ा रुआबदार व्यक्तित्व था। पहली बार मैं उनसे मिला तो वे बहुत खुश हुए और बोले: "कल भी आप दर्शन देने पधारना।"

अनुक्रमणिका

पूज्य बापू और पूज्य घाटवाले बाबा के साथ मिलन-प्रसंग घाटवाले बाबा का जीवन-परिचय

पूज्य घाटवाले बाबा के विषय में बापू जी कहते हैं- "हरिद्वार में गंगा जी के तट पर हरकी पौड़ी पर मायापुल के पास बिरला घाट है। उस घाट पर रहने वाले घाटवाले बाबा हमारे मित्रसंत थे। वे बहुत ही ऊँची कमाई के धनी थे। जगद्गुरु शंकराचार्य जैसे भी उनके चरणस्पर्श करने आते थे। चुटकी बजाकर पानी में से दूध बनाने वाले, घी बनाने वाले योगी भी हमें मिले लेकिन घाटवाले बाबा के आत्मज्ञान के आगे चमत्कार करके लोगों को प्रभावित करने वाले कुछ भी नहीं। ऐसे वे तत्त्ववेत्ता थे। योग के चमत्कारों से बहुत आगे थे घाटवाले बाबा।

बाबा को उनके साधनाकाल में किसी साधु ने एक मंत्र देकर उसके जप की विधि बतायी और कहा: "इस मंत्र को जपोगे तो अद्भुत चमत्कार होंगे लेकिन उसकी सफलता का आधार तुम्हारी एकाग्रता और सच्चाई पर निर्भर है।"

घाटवाले बाबा ने बाद में बताया: "उस समय उस मंत्र का प्रयोग करने के लिए मैंने भ्रूमध्य में ध्यान करते हुए मंत्र का जप किया।"

भ्रूमध्य को तीसरा नेत्र या आज्ञाचक्र भी कहते हैं। वह आज्ञा चलाने का केन्द्र है। तुम्हारा संकल्प सिद्ध होने की जगह है वह। जब मनुष्य भ्रूमध्य में ध्यान करता है तो उसकी चेतना सिमटकर भ्रूमध्य में आ जाती है। फिर चमत्कार घटित होने लगते हैं।

घाटवाले बाबा ने कुछ दिन मंदिर में जप किया। एकाग्र चित्तवाले तो वे थे ही। एक दिन वे जप कर रहे थे तब अचानक उस मंदिर के घंट अपने-आप बजने लगे, दरवाजे धड़ाधड़ खुलने और बंद होने लगे। यह अद्भुत दृश्य देखकर पुजारी दौड़ता हुआ आया और बोला: "यह क्या कर रहे हैं महाराज ! कैसी माला जप रहे हैं? मेरा मंदिर-वंदिर तोड़ देंगे क्या ?"

बाबा उठकर शांति से चले दिये।

वे जंगल में जहाँ बैठते थे, वहाँ कई साँप आते तो वे उनको उठाकर किनारे रख देते। बाबा नंगे पैर, खुले सिर, केवल एक टाट (कंतान) लपेटकर रहते थे। इसलिए उनका नाम टाटवाले बाबा भी पड़ गया था। उनका मूल नाम क्या था यह आज तक कोई नहीं जान सका। घाट पर रहने के कारण लोग उन्हें घाटवाले बाबा कहकर बुलाते थे।"

घाटवाले बाबा अपने पूर्वकाल तथा साधनाकाल के विषय में प्रायः किसी को कुछ बताते नहीं थे लेकिन ब्रह्मज्ञानी संत पूज्य बापू जी के आगे उन्होंने अपना हृदय खोलने में कुछ बाकी भी नहीं रखा। अपने संस्मरणों में बापू जी उनके बारे में कहते हैं-

"एक बार बाबा जी ने बताया था: "मैं काशी से गंगा के किनारे-किनारे पैदल चलकर हरिद्वार आया। देखा कि हरिद्वार में बड़-बड़े मठ हैं, मंडलेश्वर हैं लेकिन ब्रह्मज्ञान का सत्संग कहीं नहीं है। 'श्रीकृष्ण ने मक्खन खाया, गोपियों को नचाया... राम जी आये, शिवजी आये, भक्तों को दर्शन दिये...' ये सब कथाएँ सुनने को बहुत मिलती हैं लेकिन जिससे सारे कर्मों से पार हो जायें ऐसे ब्रह्मज्ञान के जहाज का तो कहीं पर अड़्डा नहीं है। इसलिए मैं ऊब गया कि 'हरिद्वार में वेदांत का सत्संग नहीं है तो यहाँ रहकर क्या करना !' हिमालय जाऊँगा, कहीं तो कोई योगी, संत मिल जायेंगे जो वेदांत का सत्संग सुनाकर आत्मा-परमात्मा में विश्रान्ति दिला देंगे।

इस प्रकार मैं निकल पड़ा ऐसे ब्रह्मज्ञानी संत की खोज में। कई दिनों तक भूखा-प्यासा चलता रहा। कहीं तो कुछ भी खाने को नहीं मिलता था, 2-4-6 दिन के बाद कहीं पर आटा बँटता हुआ देखता। भूख ऐसी लगती थी की जब तक किसी जगह से आग मिले और मैं भोजन पकाऊँ तब तक तो आधा कच्चा आटा ही खा लेता। आलू मिलते तो कच्चे-कच्चे आलू खा जाता। इतनी तितिक्षा के बाद भी कोई संत न मिले। हिमालय में 3-4 महीनों तक चलता रहा।

एक बार बदरिकाश्रम की ओर रास्ते में बीमार पड़ गया। तब मैंने मन-ही-मन शरीर कोक कहा: 'अब मुझे तो जाना है बदरिकाश्रम, पर तू चलता नहीं है तो गाँव के पास में एक श्मशान है, चल तुझे उधर ही छोड़कर आता हूँ।' शरीर को श्मशान के नजदीक ले आया। ज्यों-ज्यों श्मशान के नजदीक शरीर को लाया, त्यों-त्यों वह बोलने लगा कि 'नहीं-नहीं.... मैं ठीक हो जाऊँगा।' इस प्रकार शरीर मन को सावधान किया। फिर चला तो चलने की ताकत आ गयी।

इस प्रकार कई बार बीमार पड़ा। पेचिश हो गयी थी। हिमालय का पानी अनुकूल नहीं पड़ा। कई बार संक्रामक रोग लग गये थे परंतु अब मैं शरीर एकदम हताश-निराश हो जाता, कायरता दिखाता, पीछे हटने की तैयारी करता तो मैं सोचता कि 'पीछे क्यों हटना !' फिर शरीर को धमकाता कि 'अब तो तुझे रखकर क्या करना है ! वेदांत का सत्संग तो मिलता नहीं और तू स्वस्थ भी रहता नहीं। चल, तेरे को श्मशान में पहुँचा देता हूँ ताकि किसी को तुझे उठाना भी नहीं पड़ेगा।' इस प्रकार सोचकर किसी गाँव के श्मशान में ले जाता। जैसे ही मैं शरीर को बोलता कि 'मैं छोड़ देता हूँ प्राणों को' तो वह तुरंत ठीक हो जाता।"

अनुक्रमणिका

महापुरुषों के अनुभव को अपना बना लो

घाटवाले बाबा उम्र में तो हमसे काफी बड़े थे लेकिन हमारी मित्रता गज़ब की थी ! लोग देखते रह जाते थे। हम उस समय करीब 30-35 वर्ष के रहे होंगे और वे 60-70 वर्ष के थे परंतु मैं कभी-कभी उनकी दाढ़ी पर हाथ घुमा देता। लोग बोलते थे कि 'कहाँ तो 30-35 साल का छोकरा और कहाँ 60-70 साल का डोकरा ! दोनों मिलते हैं तो कैसे एक-दूसरे की दाढ़ी पर हाथ घुमाते हैं !' हम उनका बहुत ही आदर व प्रेम करते हैं।

आद्य शंकराचार्य की परम्परा में गद्दी पर बैठे हुए बड़े-बड़े शंकराचार्य भी उनके दर्शन करने आते, घनश्याम बिरला (प्रसिद्ध उद्योगपति) भी उनके दर्शन की आशा रखते थे और ऐसे बाबा जी के साथ आशाराम दोस्ती व विनोद करते थे। हमारा उनके साथ इतना स्नेह हो गया था और फिर स्नेह ने आदर का रूप लिया।

बाबा हरिद्वार के जंगल में जाकर सुबह-शाम घंटोभर अपनी आत्ममस्ती में बैठते थे। कोई उनके दर्शन करने आता, फल-फूल-प्रसाद रखता तो वे सब बाँट देते थे।

एक उद्दंड युवक साधु वेश में रहता था। वह उनके पास आया और बोला: "प्रसाद दे दो।" कभी-कभी लफंगे, उद्दंड लोग भी साधु का वेश धर लेते हैं। अच्छे साधु भी कई हैं लेकिन कोई-कोई साधु के वेश में आकर गड़बड़ कर देते हैं तो अच्छे साधुओं का भी नाम खराब हो जाता है। तो ऐसा कोई लफंगा साधु का वेश धरकर बाबा जी के पास आता और बाबा जी उसे बहुत सारा प्रसाद दे देते। उसने देखा कि 'ये बाबा तो अच्छे हैं, रोज़ 25-50 रुपये का माल दे देते हैं।' उसने हर रोज़ आना शुरू कर दिया। कुछ दिनों बाद उसके आचरण व्यवहार से बाबा जी को हुआ कि 'यह तो केवल प्रसाद का भगत है, आत्मज्ञान के सत्संग में इसकी रुचि नहीं है। इसे प्रसाद देना ठीक नहीं है।' ऐसा सोच कर बाबा ने प्रसाद देना बंद कर दिया।

2-3 दिन वह बिना प्रसाद के खाली हाथ गया। फिर वह अपने असली रूप में आ गया। एक दिन वह बाबा जी को बड़ी खतरनाक गालियाँ देने लगा। बाबा जी शांत रहे, सुनते रहे। गालियाँ देते-देते उसका कोष पूरा होने को ही था, इतने में ही हम वहाँ पहुँच गये तो मुझे देखकर वह तुरंत ही रवाना हो गया।

बाबा जी ने कहा: "देखो, वह मुझे कहता है कि आप पहले जैसे नहीं रहे। मुझे और भी बहुत न सुनाने जैसा सुनाया।"

थोड़ी देर बाद जब हम दोनों जंगल में घूमने गये तब मैंने बाबा जी से पूछा: "घनश्याम बिरला, कई सांसद, शंकराचार्य और हमारे जैसे संत आपके पास आते हैं, सभी आपका इतना आदर करते हैं और वह दो पैसे का लोफर आपको लोगों के सामने इतना बोलने लग गया तो उस समय आपके चित्त में क्या हुआ ?"

बाबा जी ने कहा: "पहले क्षण तो हुआ कि यह क्या बकता है ! इसको जरा सुना दूँ, ठीक कर दूँ। फिर देखा कि किस-किस को ठीक करूँगा, पहले अपने मन को ही ठीक कर लें ताकि मन को ऐसी झंझट का असर ही न हो।"

मैंने कहा: "धन्य हो बाबा ! आप मेरे मित्र हैं लेकिन इस बात पर मैं आपके चरण छूँगा।"

इस प्रकार तब से मित्र होने पर भी उनके प्रति मेरा आदरभाव बढ़ गया। मेरे गुरुदेव के बाद यदि किसी को आदर की नज़र से देखता या निःसंकोच होकर मत्था टेक लेता तो वह यह हस्ती थी।

सचमुच, महापुरुषों के अनुभवों को अपना अनुभव बनाने की कोशिश करें। किसको कब तक सुनाते रहेंगे ? किसको कब तक ठीक करते रहेंगे ? हमें अपना हृदय ऐसा बना लेना चाहिए कि जगत की ऐसी बातों का कोई असर ही न हो। हमें अपने मन-बुद्धि को झंझटप्रूफ बना लेना चाहिए।

अनुक्रमणिका

ब्रह्मज्ञानी को ब्रह्मज्ञानी ही जानें

घाटवाले बाबा की सादगी व ज्ञाननिष्ठा पराकाष्ठा पर थी। हम दोनों एक दूसरे को बहुत स्नेह करते थे।

एक बार मैंने उनसे पूछा: "आपने इतनी ब्रह्मनिष्ठा, ब्रह्मज्ञान का इतना गूढ़ रहस्य कैसे पा लिया ?"

घाटवाले बोले: "मेरी बात छोड़ो, तुम खुद तो इतनी छोटी उम्र में बाजी मारकर बैठे हो ! अपनी बात तो बोलते नहीं हो और मुझे पूछने आये !"

गुरुवाणी में आता है:

ब्रह्म गिआनी की मिति कउनु बखानै।

ब्रह्म गिआनी का गति ब्रह्म गिआनी जानै॥

'श्री योगवासिष्ठ महारामायण' उनका इष्टग्रंथ था। हमारे गुरु जी भी श्री योगवासिष्ठ को खूब ध्यान से सुनते-सुनाते थे। अपने आश्रम का भी इष्टग्रंथ 'श्री योगवासिष्ठ महारामायण' ही है। इसके पठन-मनन से बहुत लाभ होता है। साधारण लोग अपने मनमाने ढंग से साधना करके 12 साल में भी जहाँ नहीं पहुँच पाते हैं, हमारे साधक 12 सप्ताह में उससे भी ऊँची स्थिति में आ जाते हैं। यह योगवासिष्ठ 'सिद्धान्त ग्रंथ' है।

स्वामी रामतीर्थ ने तो यहाँ तक कहा है "राम (स्वामी रामतीर्थ) के विचार से अत्यंत आश्चर्यजनक और सर्वोपरि श्रेष्ठ ग्रंथ, जो इस संसार में सूर्य के तले कभी लिखे गये, उनमें से

'श्री योगवासिष्ठ' एक ऐसा ग्रंथ है जिसे पढ़कर कोई भी व्यक्ति इस मनुष्यलोक में आत्मज्ञान पाये बिना नहीं रह सकता।"

अपना इष्टग्रंथ भी योगवासिष्ठ ऐसा अदभुत ग्रंथ है !

[अनुक्रमणिका](#)

संतों की मौज

घाटवाले बाबा जब जंगल में जाते और कोई घोड़ेवाला या भैंसवाला बोलता कि "बाबा ! जंगल में जाते हो। हमारा घोड़ा उधर निकल गया है, दिखे तो हाँक दीजियो या जंगल में हमारी भैंस दिखे तो हाँक दीजियो।"

वे कहते: "ठीक है।"

उन्हें घोड़ा या भैंस दिखती तो हाँक भी देते थे। कहाँ तो आत्मा परमात्मा को पाये हुए महापुरुष और कहाँ भैंस हाँक रहे हैं ! घोड़ा हाँक रहे हैं ! उनके लिए तो सब विनोदमात्र हो जाता है। उनको ऐसा नहीं होता कि यह छोटा काम है, यह बड़ा काम है। घड़ी भर के लिए हो गया परोपकार का विनोदमात्र व्यवहार। परोपकार के लिए ब्रह्मज्ञानी सेनापति हो सकता है, राजा हो सकता है, किसी के यहाँ मिट्टी भी उठा सकता है.... अष्टावक्र जी कहते हैं- 'तस्य तुलना केन जायते ?' ऐसा महापुरुष की तुलना किससे की जा सकती है ?

श्रीकृष्ण छछियाभर छाछ पर नाच भी लेते हैं और सोने की द्वारिका का राज्य भी कर लेते हैं, द्वारिका डूबती है तो श्रीकृष्ण निश्चिंत हो के देखते हैं जबकि साधारण आदमी तो ऐसी परिस्थिति आने पर हाथ-पाँव पछाड़ता है। श्रीकृष्ण कंस जैसे बड़े-बड़े योद्धाओं को मार भी देते हैं और कालयवन के आगे सब कुछ छोड़कर नंगे पैर भागना पड़ता है तो भाग भी लेते हैं। भागते हैं तो कायर होकर नहीं, लीला करते हुए भागते हैं। धर्म की स्थापना के लिए सारी चेष्टाएँ करते हैं वे। जिन्होंने अपने विभुस्वरूप को जाना है, उनको पुण्य-पाप, सुख-दुःख का कर्ता-भोक्तापन छूता तक नहीं है। 'सुख-दुःख का कर्ता-भोक्ता मैं नहीं हूँ।' ऐसा ज्ञान होने से वे संसार में निर्लेप रहते हैं।

[अनुक्रमणिका](#)

हृदयस्पर्शी बात

घाटवाले बाबा हरिद्वार के जंगल में जाते और वहाँ ध्यान-समाधि में घंटों बैठे रहते थे। किंतु बाद में उस जगह के आसपास ही नगरपालिका के लोग पूरे हरिद्वार का कचरा डालने लगे थे।

यह देखकर एक बार मैंने उनसे कहा: "यहाँ रहने से तो अच्छा है आप मेरे साथ अहमदाबाद चलिये। मैं आपके लिए वहाँ निवास की सुविधा करा दूँगा या आपको कोई और जगह जाना हो तो बोलिये। जहाँ बोलेंगे वहाँ पर सुविधा करा दूँगा। इधर क्या रहना !"

बाबा ने कहा: "आशाराम ! जो जहाँ है वहाँ सुखी नहीं है तो वैकुण्ठ में भी वह सुखी नहीं हो सकता।"

बाबा ने कितनी ऊँची बात कितनी सहजता से कह दी ! मेरे हृदय में गहरी उतर गयी यह बात।

अनुक्रमणिका

मधुर विनोद

एक बार मेरा रसोइया भगत (एक सेवक) आया भोजन लेकर। उसे देखकर बाबा ने पूछा: "अरे भगत ! क्या लाया है ?"

सेवक: "स्वामी जी के लिए भोजन लाया हूँ।"

बाबा: "अरे, क्या तू दिनभर आशाराम जी के लिए खाना ही लाता रहता है ? अभी तो डेढ़ दो किलो दूध पीकर आये है।"

सेवक: "नहीं-नहीं, स्वामी जी इतना सारा दूध नहीं पीते। स्वामी जी को मैं कमण्डल में थोड़ा सा दूध देता हूँ, वही पीते हैं।"

बाबा: "अरे क्या, तू तो तेरे गुरु की सराहना ही करेगा न ! अभी तो आशाराम जी डेढ़ किलो दूध पी के, छटाँकभर (लगभग 60 ग्राम) काजू खाकर और नाश्ता करके आये हैं। अब तू फिर से भोजन का डिब्बा भरकर लाया है। अच्छा, बता क्या-क्या लाया है ?"

सेवक: "सब्जी-रोटी।"

बाबा: "और भी कुछ होगा...."

"हाँ, थोड़ा दही है।"

"और क्या है ?"

"सलाद और चटनी है बस।"

"अरे, और भी कुछ होगा...."

बाबा व सेव तो बातें करते रहे और मैं तो डिब्बा खोलकर खाने लगा। इतने में बाबा बोले: "वाह आशाराम जी ! छुपा के खा रहे हो !"

मैंने कहा: "नहीं-नहीं बाबा जी ! आप तो भोजन करके बैठे हो न, इसलिए।"

फिर बाबा जी ने सेवक से कहा: "अरे, कितना सारा भोजन लाया है डिब्बे में !"

सेवक बोला: "नहीं-नहीं, स्वामी जी तो केवल पतली-पतली तीन रोटियाँ ही खाते हैं।"

बाबा जी: "अरे, तू डरता क्यों है, क्यों सफाई मार रहा है तेरे गुरु की ? वे तो ब्रह्मवेत्ता है। खा भी लें तो क्या घाटा पड़ता है ! डेढ़ किलो, तीन किलो दूध पी लें तो भी क्या है और छप्पन भोग खा लें तो भी क्या है ! यह कोई भिखमंगों का मार्ग नहीं है, तू डरता क्यों है तेरे

गुरु के लिए ? आशाराम तो ब्रह्मवेत्ता है, शहंशाह हैं। चाहे कुछ खायें, क्या फर्क पड़ता है ! क्यों डरता है ?"

ऐसा सुनकर सेवक को भी बुलंद बना देते। जैसे समुद्र में स्थित पर्वत समुद्र की लहरों को थामता है, ऐसे ही संसार में ज्ञानवान अपने चित्त को भी थामते हैं और दूसरों को भी स्वयं के चित्त को शोक, दुःख व मुसीबतों में थामने का ज्ञान देते हैं।

अनुक्रमणिका

विजानंद महाराज पर कृपा

गंगा जी के घाट पर दूसरे महाराज हो गये विजानंद। वे घाटवाले बाबा के दर्शन करने आते रहते थे और मुझसे भी मिले थे। वे बी.ए. पढ़े थे। वेदांत व गीता पर प्रवचन करते थे। प्रवचन के लिए उनके पास मोबाइल वैन थी। एक साल बाद वे मुझे फिर से मिले, तब मैंने देखा कि वे पहले की अपेक्षा बहुत कम बोलने लगे हैं और पहले का जो स्वभाव था वह भी बदल गया था। पहले जो चंचलता थी वह भी कम हो गयी थी। अतः मैंने उनसे पूछा: "अरे विजानंद ! क्या हो गया तुम्हें ?"

"स्वामी जी ! क्या कहूँ ? बस, यह सब मुझ पर बाबा की कृपा हुई है।"

"अरे, बाबा की कृपा हुई तो तुम गूँगे क्यों हो गये ?"

"नहीं-नहीं स्वामी जी ! थोड़ा सा जानता था तब ज्यादा बोलता था लेकिन बाबा जी की कृपा से इतना-इतना जाना है कि अब थोड़ा बोलने की भी रुचि नहीं होती है।"

'भागवत की कथा करने वाले एक पंडित कथा के बाद बहुत थक जाते थे। मस्तिष्क भारी-भारी रहता था। उन्होंने काफी इलाज करवाया लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। श्री घाटवाले बाबा ने उनको ज्ञानमुद्रा में बैठने की विधि बतायी। कुछ ही समय में पंडित जी को चमत्कारिक लाभ हुआ।

ज्ञानमुद्रा से मस्तिष्क के ज्ञानतंतुओं को पुष्टि मिलती है और चित्त जल्दी शांत हो जाता है। आत्मकल्याण के लिए, चित्तशुद्धि के लिए ज्ञानमुद्रा बड़ी सहायक है। इस मुद्रा में प्रतिदिन थोड़ी देर बैठना चाहिए।

ज्ञानमुद्रा की विधि: ब्राह्ममुहूर्त की अमृतवेला में शौच-स्नानादि से निवृत्त होकर गर्म आसन बिछाकर पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठ जाओ। 10-15 प्राणायाम कर लो। त्रिबंध के साथ प्राणायाम हों तो बहुत अच्छा। तदनंतर तर्जनी यानी अँगूठे के पासवाली पहली उँगली एवं अँगूठे के सिरे वाले भागों को आपस में मिलायें एवं दोनों हाथों को घुटनों पर रखें। शेष तीनों उँगलियाँ सीधी व परस्पर जुड़ी रहें। हथेली ऊपर की ओर रहे। गर्दन व रीढ़ की हड्डी सीधी, आँखें अर्धान्मीलित (आधी खुली), शरीर अडोल रहे।

अब गहरा श्वास लेकर 'ॐ' का दीर्घ गुंजन करो। प्रारम्भ में ध्वनि कंठ से निकलेगी, फिर गहराई में जाकर हृदय से 'ॐ....' की ध्वनि निकालो। बाद और गहरे जाकर नाभि या मूलाधार से ध्वनि उठाओ। इस ध्वनि से सुषुम्ना का द्वारा खुलता है और जल्दी से आनंद प्राप्त होता है। चंचल मन तब तक भटकता रहेगा जब तक उसे भीतर का आनंद नहीं मिलेगा। ज्ञानमुद्रा के अभ्यास व ॐकार के गुंजन से मन की भटकान शीघ्रता से कम होने लगेगी।

अनुक्रमणिका

घाटवाले बाबा की शिष्या का ध्यान लगा

एक महिला डॉक्टर घाटवाले बाबा की शिष्या थी। वह एकदम खास, निकट की चेली थी, भावुक थी। खूब भाव से बाबा जी की सेवा करती थी। बाबा जी वृद्ध थे तो शरीर की अवस्था अनुसार उनका मल-मूत्र आदि साफ करने में भी संकोच नहीं रहता था, ऐसी वह भक्तानी थी। वह भक्तिमार्गी थी और घाटवाले बाबा ज्ञानमार्गी थे। एक दिन बाबा जी ने मुझे कुछ कहा: "इस पर भी जरा शक्तिपात कर दो।"

मैंने उससे कहा: "कल सुबह कुछ खाये पिये बिना आ जाना, मैं भी आ जाऊँगा। दे दूँगा तुम्हें दीक्षा।"

दूसरे दिन वह महिला और उसका पति आये, बैठे। मैंने कहा: "श्वासोच्छ्वास को देखो।"

महिला का पति तो आँखें बंद करे, फिर खोले लेकिन भक्तानी ने तो ईमानदारी से श्वासोच्छ्वास को देखा तो फिर मिल गयी उसको भगवत्प्रसादी। यह तो भगवान की लीला होती है... उसका तो वहीं ध्यान लग गया। ध्यान में वह हँसने लगी। फिर तो वह अपने घर में रोज 2-2 घंटे ध्यान में बैठने लगी। अब उसका पति सोचने लगा कि 'यह तो घंटों तक ध्यान में बैठती है और इसका ध्यान भी लग जाता है, मेरा तो ध्यान लगता ही नहीं। बापू जी ने यह कैसे कर दिया ?'

बाद में घाटवाले बाबा ने मुझसे पूछा: "यह क्या कर दिया, उसे छुआ भी नहीं, सिर पर हाथ रखा नहीं, कोई बात भी नहीं की, केवल दृष्टि से ही कृपा बरसा दी ! यह सब कैसे हुआ ?"

मैंने विनोद में कहा: "यह सब कैसे हुआ यह मैं क्यों बताऊँ ? पहले दीक्षा लो, मेरे चले बनो। बाद में बात करो।"

बाबा जी: "अच्छा जी ! दे दो दीक्षा।"

मैंने कहा: "दक्षिणा रखो।"

बाबा जी ने किसी सेवक से कहा: "अरे, नारियल ला।"

फिर बाबा जी ने मुझे कहा: "लो गुरु जी नारियल !"

मैंने कहा: "यह तो आप मजाक कर रहे हो, सच्चे हृदय से चले बनोगे तभी दीक्षा दूँगा।"

दीक्षा उनको क्या लेनी और मुझे उनको क्या देनी ! हम दोनों आपस में ऐसे खूब विनोद करते रहते थे।

अनुक्रमणिका

साधु कैसे होने चाहिए ?

घाटवाले बाबा के पास एक आदमी आया और बोलने लगा:

"आजकल के साधु बड़ी-बड़ी डीक हाँकते हैं, लम्बे-चौड़े कपड़े पहन लेते हैं, संन्यासी हो जाते हैं, मठ बना लेते हैं और अपने को ज्ञानी मानते हैं। यह सब ढोंग है।"

ऐसी उसने आधे घंटे तक बकवास की। बाद में घाटवाले बाबा ने उसे जवाब दिया: "साधु से होने चाहिए, वैसे होने चाहिए... वे साधु ऐसे हैं - वैसे हैं, कोई सच्चे ज्ञानी नहीं हैं.... यह सब बोलता है तो तू जैसा मानता है कि ज्ञानी ऐसे होने चाहिए, वैसे तू खुद ही बनकर दिखा दे न ! बात ही पूरी हो जाय।"

आत्मज्ञानियों पर, संतों-महापुरुषों पर आरोप मत मरो। तुम्हारे से तो वे हजार गुना प्रसन्न होते हैं, हजार गुना मौज में होते हैं। तुम्हारे से तो उन्होंने हजार गुना आगे की यात्रा की होती है। पहले वहाँ तक तो तुम पहुँच के दिखाओ !

'ज्ञानवान ऐसे होने चाहिए, वैसे होने चाहिए' - इस प्रकार द्वेष की आग में तपते रहोगे तो उलझ जाओगे। तुम्हारे थर्मामीटर से उन्हें नापोगे तो नहीं चलता है। ज्ञानवान द्वारा स्वाभाविक विनोदमात्र व्यवहार हो जाता है। ज्ञानवान महापुरुष जो भी करते हैं, भले हम उस वक्त अयोग्य लगे परंतु उनके द्वारा जो भी होता है वह अच्छा ही होता है, सामने वाले के हित का ही होता है। साधु ते न होइ न कारज हानी।

अनुक्रमणिका

दुराग्रह

घाटवाले बाबा वेदांती संत थे। सत्संग में बार-बार कहते थे कि 'निर्भय रहो।' उनकी एक शिष्या ने बाबा जी की इस बात को पकड़ लिया। वह वृद्ध थी एवं दिल्ली के किसी स्कूल की प्राचार्या (प्रिंसीपल) थी। वह दिल्ली से बाबा जी के पास आती थी।

एक दिन खट्टे आम के पकौड़े बनाकर बाबा जी के पास लायी। बाबा जी ने कहा: "मैंने अभी दूध पिया है। दूध के ऊपर पकौड़े नहीं खाने चाहिए।"

वह बोली: "बाबा जी ! मैंने मेहनत करके आपके लिए ही बनाये हैं, खाइये न !"

बाबा जी: "मेहनत करके बनाये हैं तो क्या मैं खाकर बीमार पड़ूँ ? नहीं खाने, ले जा।"

"बाबा जी ! कुछ भी हो, आज मैं खिलाकर ही रहूँगी।"

बाबा जी ने डाँटते हुए कहा: "मतलब...?"

"आपने ही तो कहा है कि 'निर्भय रहो।' मैं निर्भय रहूँगी। आप चाहे कितना डाँटे-धमकायें, मैं तो खिलाकर ही रहूँगी।"

गुरु शिष्या का यह संवाद मैं सुन रहा था।

मैंने सोचा, 'राम... राम... राम....! महापुरुष कैसी निर्भयता कह रहे हैं और मूढ़ लोग कैसी निर्भयता पकड़ लेते हैं !'

निर्भय होने का अर्थ यह नहीं है कि जो हमें निर्भय बनायें, उनका ही विरोध करके अपना एवं उनके जीवन का हास करें। निर्भयता का अर्थ नकटा होना नहीं है, निर्भयता का अर्थ मन को गुलाम होना नहीं है, निर्भयता का अर्थ है निर्भय नारायण तत्त्व में जागने के लिए संसार के भय का अभाव !

अनुक्रमणिका

अनधिकारी के आगे....

जो श्रीकृष्ण और श्रीराम जी का अनुभव था वही अनुभव घाटवाले बाबा का था। वे आत्मसाक्षात्कारी पुरुष थे। मैंने उनसे पूछा: "सुकरात और मंसूर को आत्मसाक्षात्कार हो गया था तो फिर उन्हें ज़हर क्यों दिया गया ? सूली पर क्यों चढ़ाया गया ?"

"और क्या करें ? अति राजसी, अति तामसी, अनधिकारी के आगे अपना अनुभव चिल्लाने लगे। अयोग्य व्यक्ति के आगे तो नहीं बोला जाता है। अपना यह अनुभव तो कोई-कोई विरले होते हैं, जिनकी पात्रता होती है उन्हीं के सामने बताया जाता है। 'अनलहक.... भगवान एक और व्यापक है। और वह मैं हूँ, मैं ब्रह्म हूँ।' -यह कोई चिल्लाने की चीज़ थोड़े ही होती है !"

अनुक्रमणिका

कोई आत्मसाक्षात्कार कराने वाला उपदेशक आया

घाटवाले बाबा का अभ्यास आत्मविचार का था। वे उसके सिवा की कभी कोई उलटी-सीधी बातें नहीं बोलते थे। एक बार मैं उनके साथ बैठा तब वहाँ कोई भगत आ गया और हमारे साथ बातचीत करने लगा कि 'आत्मसाक्षात्कार ऐसे नहीं, ऐसे होता है।' उसकी बातें सुनकर मैंने उनसे कहा: "तुम तो हमारे से ज्यादा जानते हो। कुछ सुनाओ।"

कोई नया उपदेशक आ जाता तो घाटवाले और हम - दोनों एक हो जाते थे। उसके सामने शिष्य बन जाते थे। उसको तो शिष्यों की जोड़ी मिल जाती थी। घाटवाले बाबा ने मेरे को इशारे से सहमती दे दी। इससे हम दोनों मौन हो गये। उपदेशक ने अपना उपदेश चालू कर दिया: "जब मनुष्य आत्मसाक्षात्कार के नज़दीक होता है, जब भगवान के नज़दीक होता है तो शास्त्रों ने कहा है कि सहस्रार से एक ऐसी आग-सी निकलती है, जिसमें सारे पाप जलकर भस्म हो जाते हैं। उस वक्त गुरु की कृपा होती है तो आत्मसाक्षात्कार होता है।"

उसकी बातों से हम दोनों ने उसे भाँप लिया। मैंने बाबा से कहा: "कितने सालों से यहाँ रहते हो तो भी आपको अभी तक आत्मसाक्षात्कार नहीं हुआ !"

उन्होंने भी विनोद में सहमति देते हुए कहा: "हाँ, मुझे आत्मसाक्षात्कार नहीं हुआ। आपको भी नहीं हुआ है। अब हम दोनों को ये करायेंगे।"

मैंने कहा: "बराबर है।"

हम भक्त बनकर बैठ गये। हमारे भक्त चकित हो गये कि 'साँई और बाबा यह क्या कर रहे हैं !'

उपदेशक ने कहा: "मैं आप सबको अभी अनुभव कराता हूँ। 10 मिनट में आत्मसाक्षात्कार हो सकता है। आँखें खोलो, बंद करो। अनुभव करो कि मैं कुछ नहीं हूँ, परमात्मा ही सब कुछ है। मेरे हृदय में परमात्मा है..." आदि सुनी-सुनायी, पढ़ी-पढ़ायी बातें थीं। बड़ा भद्दा लग रहा था। हम दो थे और आठ दूसरे भक्त थे। हम दसों को उसने आत्मसाक्षात्कार कराया ! फिर पूछा: "अनुभव हुआ ?"

सब हँसने लगे मुझे तो विनोद करना था इसलिए मैंने कहा: "बहुत बढ़िया अनुभव हुआ।"

"क्या हुआ ?"

"ठीक है। तो आप यह अभ्यास चालू रखना, आप सत्पात्र हो।"

"इसके बाद का, आगे का रास्ता ?"

"मैं उदयपुर में रहता हूँ। जब आगे रुकावट आये तो मेरे पास आ जाना।"

"वहाँ आने का किराया कौन देगा ?"

"आप चिंता न करो। आप मुझे जहाँ याद करोगे वहाँ मैं मिल लूँगा।"

उसरी ऐसी बिना सिर पैर की बातों पर भी हमने उसका अनादर नहीं किया क्योंकि आप अमानी रहना और दूसरे को मान देना चाहिए। मान तो दिया पर बेवकूफ तो बिल्कुल नहीं बन सकते न ! इसलिए अंत में मैंने कह ही दिया: "मुझे मुँह में स्वाद तो आया था लेकिन जिस समय तुम ध्यान करा रहे थे तब हम दोनों अंगूर खा रहे थे। उन अंगूरों का स्वाद आ रहा था। कोई तुम्हारे आत्मा का स्वाद नहीं मिला। अब कल स्वाद दिलाइयो।"

"कल तो मैं ऋषिकेश जाऊँगा।"

उसने देख लिया कि इनके ऊपर तो कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा इसलिए वह रवाना हो गया।

तात्पर्य यह है कि तुम्हारी समझ ऐसी होनी चाहिए कि दूसरा व्यक्ति तुम्हारे पर ऐसा-गैरा, मनमाना, मनगढ़ंत रंग चढ़ा न सके। सच्चे ब्रह्मज्ञानी संत ही वास्तव में अज्ञान को हटाकर आत्मज्ञान का प्रकाश दे सकते हैं।

बाबा कहा करते थे: "आत्मसाक्षात्कारी पुरुष ब्रह्मलोक तक के जीवों को सहायता करते हैं। उन्हें पता भी नहीं चलने देते की कोई उन्हें सहायता कर रहा है, ऐसा उनका स्वभाव होता है !"

अनुक्रमणिका

चौथ का चन्द्रमा देखा

एक बार घाटवाले बाबा ने मुझसे पूछा: "भाई ! चौथ का चन्द्रमा देखने से कलंक लगता है - ऐसा लिखा है।"

मैंने कहा: "हाँ।"

बाबा: "श्रीकृष्ण को भी लगा था ?"

"हाँ।"

बाबा: "हमने तो देख लिया।"

"आपने देखा तो आपको कुछ नहीं हुआ ?"

बाबा: "मेरे को तो कुछ नहीं हुआ।"

"कितना समय हो गया ?"

बाबा: "वर्ष पूरा हो गया। पिछले साल देखा था।"

"कुछ नहीं हुआ तो शास्त्र झूठा है ?"

बाबा: "नहीं, मेरे को तो कुछ नहीं हुआ पर कुछ लोगों ने हरिद्वार की दीवारों पर लिख दिया कि 'घाटवाले बाबा ऐसे-ऐसे (अनर्गल वचन) हैं।' लोगों ने लिख दिया और लोगों ने पढ़ा, मेरे को तो कुछ नहीं हुआ।"

अब ब्रह्मज्ञानी संत को क्या होगा बाबा !

संवत् 2046, मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष दशमी (22 नवम्बर 1989, बुधवार) के दिन पूज्य घाटवाले बाबा ब्रह्मलीन हुए। अपने इन प्रिय, दुलारे मित्रसंत को श्रद्धांजलि अर्पित करने पूज्य बापू जी तुरंत हरिद्वार पहुँच गये थे। आज भी बिरला घाट पर उनका समाधि-मंदिर बाबा की स्मृति दिलाता है।

(संवाद (पूज्य बापू जी एवं घाटवाले बाबा, भाग: 1 व 2) वीसीडी भी देखें।)

अनुक्रमणिका

पूज्य बापू व संत लाल जी महाराज के मिलन-प्रसंग स्वयं पूज्य श्री के शब्दों में

लालजी महाराज का परिचय

मेरे अन्य एक मित्रसंत थे - लाल जी महाराज। वे अहमदाबाद से 55-60 कि.मी. दूर मेहसाणा के पास वरसोड़ा गाँव में रहते थे। किसान श्री अमथाभाई पटेल व माता मोंची बहन के यहाँ श्री लाल जी महाराज का जन्म वि. सं. 1971 (गुजरात में 1970) की चैत्री पूर्णिमा के दिन हुआ था। माता-पिता राम नाम का खूब जप करते थे।

एक दिन शाम के समय उनकी माँ भगवन्नाम-जप कर रही थीं। माँ ने बेटे से कहा: "जरा गाय-भैंसों को चारा डाल देना।"

बारिश के दिन थे। लाल जी महाराज घास-चारा उठाकर ला रहे थे तो उसके अंदर बैठे भयंकर साँप पर दबाव पड़ा और उसने उनको काट लिया। वे चिल्लाकर गिर पड़े। साँप के जहर से पूरा शरीर नीले वर्ण का हो गया। कुछ ही देर में वे भगवान की गोद में सो गये (मर गये)।

गाँव के लोग दौड़े आये और बोले: "माई ! तेरा इकलौता बेटा चला गया।"

माँ- "अरे ! क्या चला गया ? भगवान की जो मर्जी होती है वही होता है।"

माँ ने बेटे को लेटा दिया। सामने घी का दीया जलाया और माला करते हुए भगवन्नाम जप शुरू कर दिया। वह रात भर जप करती रही। सुबह पानी लाकर बेटे के शरीर पर छिड़क के बोली: "लालू ! उठ। सुबह हो गयी है।"

बेटे का सूक्ष्म शरीर वापस आया और बेटा उठकर बैठ गया। तत्पश्चात् वे 80 वर्ष से भी अधिक जिये।

उत्तम जापक द्वारा श्रद्धा से किया गया मंत्रजप मृतक में भी प्राण फूँक सकता है। माता की दृढ़ भगवद्भावना के बल पर श्रीरामनाम-स्मरण की साधना प्रकट फलदात्री बनी। इस प्रकार राम नाम स्मरण का अखूट धन लाल जी महाराज को धरोहर में मिला था।

अनुक्रमणिका

एक ही सब, सब ही एक

लाल जी महाराज जिस दिन विद्यालय में गये उसी दिन वापस आ गये। स्लेट में एक का अंक लिखने के बाद दूसरा कोई अंक लिखने की उन्हें इच्छा ही नहीं हुई।

शिक्षक: "दूसरा भी कुछ लिखो।"

"दूसरा क्या है ? एक राम के सिवा दूसरा कुछ नहीं है।"

"और कुछ लिखो।"

"और कुछ नहीं है।"

विद्यालय में टिक न सके तो उन्हें घर की गाय-भैंस व बैलों को चराने ले जाने का काम मिला। दोपहर को खेत में सो जाते तो सपने में उन्हें अनेक विद्वान ब्राह्मण-समुदाय दर्शन देकर वेदमंत्रों के पाठ करवाते थे।

अनुक्रमणिका

बचपन का भोलापन

लाल जी महाराज ने मुझसे कहा था कि "मैं बचपन में कितना भोला था। उस संदर्भ में आपको एक प्रसंग बताता हूँ। एक बार हमारे गाँव में महाभारत का एक नाटक दिखाया गया। उसे देखने गया तो अभिमन्यु को जब सारे राजाओं ने घेर लिया और तलवार से मारने लगे, तब मैं खड़ा होकर चिल्लाने लगा कि 'मत मारो बेचारे को' परंतु किसी ने नहीं सुना। फिर घर आकर मैं बहुत रोया।

माँ ने मुझे बहुत समझाया कि वह तो नाटक था, कोई नहीं मरा परंतु जब नाटक कम्पनी के लोगों से मिलकर आया और तसल्ली हुई तभी माना।

अनुक्रमणिका

अलौकिक रूप से वेदना-शांति

लाल जी महाराज के पिता के देवलोक जाने के बाद पिता की सम्पत्ति और चौधरी पटेल जाति में गाँव की परम्परागत मुखियागिरी का पद लाल जी महाराज को मिला। उनके किसी रिश्तेदार ने लाल जी महाराज पर मूठ मारने की मैली विद्या का प्रयोग करवाया ताकि उसे सम्पत्ति भी मिल जाय और मुखिया भी बनने को मिले।

इससे लाल जी महाराज के शरीर में असह्य पीड़ा शुरू हो गयी। शरीर में मानो आग, आग, आग... भयानक जलन होने लगी। कहते हैं, जिसके लिए मूठ मारी जाती है वह कहीं का नहीं रहता है। कोई हकीम, डॉक्टर अथवा झाड़ू-फूँक करने वाला उसे ठीक नहीं कर सकता। लेकिन लाल जी महाराज हनुमान के प्रेमी भक्त थे। इसलिए वे हनुमान जी का मंत्रजप करने लगे। थोड़ी देर बाद उन्हें एक नन्हा सा, अत्यंत आकर्षक बालक सामने से आता हुआ दिखा। वास्तव में हनुमान जी ही एक नन्हें-मुन्ने बालक का रूप लेकर उनके पास आये थे। उन्होंने लाल जी महाराज से कहा: "मेरे साथ आओ।"

उन दोनों के स्थूल शरीर तो वहीं रहे, सूक्ष्म शरीर से बालक उड़ता चला गया और लाल जी महाराज को भी साथ लेता गया। वे उड़ते-उड़ते इस पृथ्वीलोक से परे किसी दिव्य वन में जा पहुँचे। नीचे उतरकर बेर के पेड़ के नीचे एक कुटिया में विराजमान ऋषि से उस नन्हें-से बालक के रूप में आये हनुमान जी ने प्रार्थना की: "यह मेरा भक्त है। इसको ठीक कर दीजिये।"

उन ऋषि ने किसी वनस्पति की पतली डाली से उतारा करके फेंका तो वह डाली जल गयी। फिर उन ऋषि ने लाल जी महाराज जी से कहा: "वत्स ! तुम्हारे इष्ट हनुमान जी तुम्हारे रक्षक हैं इसीलिए तुम्हारी मृत्यु टल गयी। तुम्हारा मंगल होगा।"

यह भगवद्भजन की महिमा ! बाद में उन्होंने श्री राम जी और माँ गायत्री के भी दर्शन किये थे। लाल जी महाराज ने भगवत्प्राप्ति अर्थ अज्ञातवास व मौन-व्रत का पालन करते हुए नर्मदा किनारे 12-12 वर्ष के दो अनुष्ठान भी किये थे। तत्पश्चात् उनके सदगुरु श्री स्वामी माधवतीर्थ जी की प्रेरणा से गुरुमंत्र के 18 करोड़ जप का अनुष्ठान भी किया। इस कलियुग में इतने सच्चे, भजनानंदी संत मिलने मुश्किल हैं।

अनुक्रमणिका

दिव्य रूप से नेत्रज्योति आयी

लाल जी महाराज की वृद्ध माँ को जाला (एक नेत्र रोग) के कारण आँखों से दिखना बिल्कुल बंद हो गया था। वैद्य वह डॉक्टरों ने भी जवाब दे दिया कि उन्हें अब कभी नहीं

दिखेगा। तब किसी ने उनकी माता से कहा: "तुम तो भगवान की भक्त हो, भगवान से कह दो न !"

माँ ने भगवान से प्रार्थना की: 'भगवान ! मुझे दिखता नहीं है। मुझे दिखने लगे ऐसा आप ही कुछ करो। आप ही मेरे वैद्य हो।'

एक दिन भगवान राम जी सपने में आये और माँ से कहा: "बड़ी इन्द्रवारुणी नामक लता पर जो फल आते हैं, उसके दो टुकड़े करके अंदर के गर्भ को ललाट पर लगा देना तो आँखें ठीक हो जायेंगी। लेकिन उसका रस आँखों में न चला जाय इसकी सावधानी रखना।"

माँ ने ऐसा ही किया और उनकी नेत्रज्योति वापस आ गयी। लाल जी महाराज ने मुझे यह प्रसंग बताया और मैंने भी अनेकों को यह प्रयोग बताया। इससे कड़्यों को लाभ हुआ।

अनुक्रमणिका

देवों के सहज दर्शन

लाल जी महाराज तपस्या करते हुए गुजरात में वरसोड़ा गाँव में नदी के तट पर एक जगह गुफा बनाकर रहते थे। वे चौबीसों घंटे मौन रहते थे। रात्रि को 2 बजे बैठकर जप करते थे। अन्न नहीं लेते थे, अतः नींद भी कम आती थी। थोड़े दिन इसी तरह बीत गये।

एक दिन इसी प्रकार वे जप कर रहे थे कि अचानक उन्हें काले कलूटे 5 आदमी आते दिखाई दिये। उन्हें देखकर लाल जी महाराज विचार ही कर रहे थे कि 'पता नहीं कौन हैं ? क्यों आये हैं ?' इतने में वे पाँचों बोलने लगे:

पहला: "इधर क्यों बैठा है ? यहाँ क्या कर रहा है ?"

दूसरा: "पकड़ लो इसको।"

तीसरा: "कुचल डालो।"

चौथा: "पीस डालो।"

पाँचवाँ- "निचोड़ डालो।"

ऐसा कहकर वे लाल जी महाराज को पकड़ने के लिए आगे बढ़े। उनका शरीर अत्यंत विकराल राक्षस के समान हो गया। उनकी हथेलियाँ तो इतनी बड़ी थीं कि उनमें सामान्य कद का व्यक्ति का भी चिड़िया जैसे लगे।

बाद में लाल जी महाराज ने बताया: "फिर मैं घबरा गया। अँधेरी रात थी। बीहड़ इलाका था। भयानक सन्नाटा छाया हुआ था। मैं पुकार उठा कि 'हे प्रभु ! अब तेरे सिवाय मेरा कोई दूसरा रक्षक नहीं है।' फिर मैं जोर-जोर से रामनाम का जप करने लगा। लगभग आधे घंटे तक मेरी आँखें बंद रहीं। बाद में जब आँखें खोलीं तो देखता हूँ कि पाँचों विकराल आकृतियाँ देदीप्यमान, मुकुटधारी देवपुरुषों के रूप में खड़ी हैं। देखते ही देखते एक - एक करके वे देवपुरुष

उस बीहड़ में अदृश्य होने लगे। जब पाँचवाँ भी आधा अदृश्य हो चुका, तब वह बोला: "तू घबराना मत। हम गंधर्व हैं। विहार करने निकले थे। हम तेरी परीक्षा कर रहे थे।"

भजन करते-करते जब साधक पाँचवें केन्द्र में पहुँचता है तो कभी यक्ष दिखते हैं तो कभी गंधर्व किन्नर दिखते हैं, कभी पूर्वजन्म दिखता है तो कभी ऋद्धि-सिद्धियाँ हाथ लगती हैं। फिर भी साधक को चौथे-पाँचवें केन्द्र में रुकना नहीं चाहिए वरन् और आगे जाने का प्रयत्न चाहिए।

अनुक्रमणिका

संत परम हितकारी

साबरमती नदी के तट पर लाल जी महाराज के गुरु स्वामी माधवतीर्थ जी का आश्रम है। जब वे महापुरुष हयात थे उस समय की बात है।

एक दिन लाल जी महाराज ने बाहर एकांत में जप-तप करने का निश्चय किया। आश्रम में संचालक को कह के गये कि "मैं अभी जाता हूँ। रात को चन्द्र दर्शन करके ही कुछ लूँगा। मुझको कोई खोजे-वोजे नहीं, आज मेरा उपवास है।"

दोपहर हुई तो गुरु जी ने उन्हें बुलाया: "कहाँ है लाल जी ?"

संचालक ने कहा: "वे तो ध्यान-भजन करने गये हैं और चन्द्र दर्शन करने के बाद ही भोजन करेंगे।"

माधवतीर्थ जी ने लाल जी महाराज को बुलाकर कहा: "चलो मेरे साथ, एक माई के यहाँ भोजन करने जाना है।"

अब गुरु जी को पता है फिर भी बोल रहे हैं, 'भोजन करने चलो।' गुरु जी ने कह दिया तो क्या करें लाल जी महाराज बेचारे ! गये उस बुढ़िया के पास जहाँ आमंत्रण था।

"अच्छा महाराज ! आ गये, ठीक है।" बुढ़िया बोली। उसने जो टाट भैंस की पाड़ी को ओढ़ाया था, वही टाट झाड़ा और बिछा दिया। उसमें गोबर आदि लगा था।

माधवतीर्थ जी महाराज और लाल जी महाराज बैठे। माधवतीर्थ जी अपनी समता में मस्त थे। लाल जी महाराज तो देखते ही रहे।

थोड़ी देर हुई, माई ने एक थाली रख दी। थाली के ऊपर एक कटोरा था। माधवतीर्थ जी ने थाली पर से कटोरा हटाया तो अंदर एक रोटी रखी हुई थी। महाराज ने उस रोटी के दो टुकड़े किये। आधी रोटी लाल जी महाराज को दी और आधी खुद खायी। रोटी खा के चले। पैदल-पैदल आश्रम में आना था। माधवतीर्थ जी महाराज तो आत्मारामी थे। उनके चेहरे पर कोई शिकन नहीं, कोई फरियाद नहीं, कुछ नहीं, खूब शांति।

"बापू जी ! उसके यहाँ...." लाल जी महाराज इतना ही बोल पाये थे कि माधवतीर्थ जी बोले: "अरे ! अपने कल्याण के लिए तुम उपवास करके अंदर बैठे रहो.... इतना सारा करोगे

अपने कल्याण के लिए, इन लोगों का कल्याण नहीं करना है तुम्हें ? उसके यहाँ जाकर टुकड़ा खाने से उसका कल्याण होता है न ? अपने को ऐसा भी करना पड़े न ?"

अपने आश्रम की बनी-बनायी रसोई छोड़ के उस श्रद्धालु बुढ़िया का टुकड़ा खाया। कितने दयालु संत ! लोगों का कल्याण करने हेतु क्या-क्या करते हैं !

अनुक्रमणिका

इष्टसिद्धि की महिमा

एक व्यक्ति मिर्जापुर रोड, अहमदाबाद में रहता था। अहमदाबाद सिटी बस में नौकरी करता था। वह लाल जी महाराज का परिचित था। वह मृत्युशैया पर पड़ा तो लाल जी महाराज उसके यहाँ गये। वह आदमी खटिया पर पीड़ित होकर कई महीनों से पड़ा था। उसकी शैया के नजदीक वे पहुँचे ही थे कि वह बोल पड़ा: "महाराज ! आप मुझे मिलने आये, बहुत अच्छा किया। मगर मुझे ये यमदूत लेने आये हैं। देखो, ये खड़े हैं चारपाई की दायीं ओर।" महाराज वहाँ पहुँचे तो वह बोलता है कि 'आप इधर आ गये तो वे बायीं ओर चले गये... अब सिरहाने आ गये.... अब पैरों की ओर आ गये....।

आधा घंटे तक महाराज इधर-उधर होते रहे। आखिर वह बोला: "अब तो वे चले गये।" उस व्यक्ति की अपमृत्यु टल गयी, जैसे अजामिल की टल गयी थी।

जो इष्टमंत्र या गुरुमंत्र जपते हैं, जिनका इष्टमंत्र सिद्ध हो गया है, उनकी हाजिरी मात्र से अपमृत्यु टल सकती है, यमदूत भी भाग जाते हैं। जो मंत्रजप करते हैं वे केवल अपना ही कल्याण नहीं करते, जहाँ रहते हैं उस कुटुम्ब परिवार और वातावरण में भी कुछ अच्छा-भला होने लगता है।

अनुक्रमणिका

विशेष स्नेह

लाल जी महाराज के प्रति स्नेह क्यों था ? क्योंकि उनके स्वभाव का एक बहुत बढ़िया गुण था, कोई जरा भी इधर-उधर की बात करता तो कहते: 'अरे ! यह क्या बात करते हो ? भक्ति बढ़े ऐसी बात करो, ज्ञान वैराग्य बढ़े ऐसी बात करो।' खुद भी ज्यादा बात नहीं करते थे, मौन ले लेते थे। दिनभर मौन रहते, शाम को 8 बजे के बाद थोड़ा बोलते, सत्संग की कोई किताब सुनते।

आत्मशक्ति का, अंतर की प्रेरणा का केवल नश्वर शरीर के लिए, उसके ऐश के लिए खर्च करना यह पापी मनुष्य की पहचान है और शाश्वत आत्मा के लिए शरीर का उपयोग करना यह पुण्यात्मा व्यक्ति की पहचान है। भाई ! शरीर है तो चलो ज्ञान-ध्यान होगा इसलिए जरा खिला दिया। ऐसा नहीं कि ऐश-आराम चाहिए, सुविधाएँ चाहिए।

लाल जी महाराज को हम इस बात पर और भी स्नेह करते हैं कि 88 साल की उम्र में भी वे अपना काम लगभग अपने हाथों से कर लेते थे। आँखों में थोड़ी तकलीफ थी इसलिए थोड़ा-बहुत काम सेवक से लेते थे, बाकी तो खुद दूध गर्म कर लेते थे, भोजन बना लेते थे 88 साल की उम्र में। वे बोलते थे: "पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन.... ये ग्यारह-ग्यारह सेवक रहते हैं मेरे पास, फिर और सेवक की क्या जरूरत है ? ये ही तो सेवक हैं!"

वास्तव में, सुविधा लेने में जो व्यक्ति पड़ता है वह आत्मा का उपयोग करके शरीर को महत्त्व देता है और जो भगवान की तरफ चलता है वह शरीर का उपयोग करके भगवद्भाव, भगवद्ज्ञान को महत्त्व देता है तथा अपना मनुष्य-जन्म सार्थक कर लेता है।

अनुक्रमणिका

साकार और निराकार की बात

संत लाल जी महाराज के प्रेम, भक्ति का भी कुछ प्रसाद लोगों को मिले इस हेतु मैंने एक बार नारेश्वर के अपने शिविर का उद्घाटन उनके हाथों करवाया। इस प्रसंग पर उन्होंने कहा: "लोग निराकार की बातें करते हैं, ब्रह्मज्ञान की बातें करते हैं, 'मैं ब्रह्म हूँ, तुम ब्रह्म हो' - ऐसा ब्रह्मज्ञान का उपदेश सबको देने लगते हैं। स्वयं पूरा दिन साकार में रहते हैं, शरीर साकार है, खाते हैं साकार में और बातें निराकार की करते हैं। तो क्या साकार के बिना उनका काम चल सकता है ?"

मैं समझ गया कि उनकी कैंची मेरी ओर है। उनके हृदय में मेरे लिए तो बहुत प्रेम था परंतु उनकी दृष्टि में तो ज्ञान-ज्ञान क्या ? हकीकत में उन्होंने जिस भक्तिमार्ग से यात्रा की थी, उसी मार्ग के लिए उन्हें इतनी आत्मीयता हो गयी थी कि दूसरे ज्ञानादि मार्ग उन्हें अधिक पसंद नहीं थे।

लाल जी महाराज ने अव्यक्त की बात काट डाली। इसलिए दूसरे दिन जब वे शिविर में आकर बैठे तब मैंने कहा: "कल उद्घाटन में मेरे मित्रसंत ने कहा कि "पूरा दिन साकार में रहते हैं और बातें निराकार की करते हैं, परंतु साकार के बिना छुटकारा नहीं है।" तो मैं अर्ज करूँगा कि साकार के बिना छुटकारा नहीं है या निराकार के बिना छुटकारा नहीं है ? - इस बात को जरा हमें समझना पड़ेगा। पूरा दिन तो हम सब साकार में जीते हैं लेकिन झूख मारकर रात को साकार शरीर निराकार से मिलता है कि नहीं ? और साकार को संभालने की शक्ति भी निराकार में डूबते हैं तभी आती है कि नहीं ? गन्ने का रस मीठा और पानी फीका होता है। तो भी गन्ने का रस पीने से प्यास नहीं बुझती यद्यपि गन्ने के रस में भी तो पानी ही आधारस्वरूप है। वैसे ही साकार मीठा लगता है, निराकार प्रारम्भ में फीका लगता है परंतु साकार को सत्ता भी निराकार से ही मिलती है। अखा जगत की बात सुनने जैसी है:

सजीवाए निर्जीवाने घड़्यो अने पछी कहे मने कई दे।

अखो तमने ई पूछे के तमारी एक फूटी के बे ?

'सजीव ने निर्जीव (मूर्ति, प्रतिमा) को बनाया, फिर वही उससे माँगने लगता है कि मुझे कुछ दे दो। तो अखा जगत तुमसे यह पूछते हैं कि तुम्हारी एक आँख फूट गयी है या दोनों ?'

जो साकार है उसके गर्भ में निराकार ही है। तुम्हारे मूल में देखो अथवा परमात्मा के मूल में देखो कि वह निराकार है या नहीं ? अव्यक्त ही व्यक्त होकर भासित होता है। व्यक्त असत्य है, अव्यक्त ही सत्य है।"

मेरी बातें सुनकर वे मेरे सामने देखने लगे और फिर हम दोनों हँस पड़े। वास्तव में हम दोनों की ऐसी जोड़ी थी की ऐसी जोड़ी तुमने कहीं और नहीं देखी होगी। हम दोनों के बीच अनोखा प्रेम था।

[अनुक्रमणिका](#)

आत्मज्ञान के साथ विनोद भी भरपूर

सन् 1980-81 में नारेश्वर (गुजरात) में पूज्य बापू जी के सान्निध्य में एक बड़ा ध्यानयोग शिविर हुआ था। उस शिविर में लाल जी महाराज भी पधारे हुए थे। लालजी महाराज केवल 1 घंटे के लिए रात को 9 बजे मौन खोलते थे। उनके पास घड़ी रखी रहती थी, 1 घंटा पूरा होते ही वे दोबारा मौन हो जाते थे। जब लाल जी महाराज सत्संग करते और बापू जी साथ में बैठे होते तो 10 बजे के पहले ही बापू जी युक्ति से घड़ी लेकर काँटा घुमा देते थे, जिससे दस पर काँटा जाता ही नहीं था।

तो लाल जी महाराज बोले: "अरे आशाराम ! क्या करते हो ? समय नहीं हो रहा है, जादू करते हो क्या ?" इस प्रकार ये दोनों संत श्री परस्पर बहुत विनोद करते थे। फिर बापू जी लाल जी महाराज का हाथ पकड़ के नदी-तट पर ले जाते घूमने के लिए, वहाँ भी खूब विनोद करते थे।

[अनुक्रमणिका](#)

लाल जी महाराज के श्रीमुख से पूज्य बापू जी का जीवन-दर्शन

पूज्य बापू जी के साथ प्रथम मुलाकात

सत्य की खोज में 'युवक की जिज्ञासा एवं मुमुक्षु-वृत्ति देखकर उन्हें मैं प्रेमपूर्वक रामनिवास ले आया।' स्थान मोटी कोरल, पंचकुबेरेश्वर महादेव

पूज्य बापू जी के साधनाकाल व उनके 40 दिवसीय अनुष्ठान के प्रत्यक्षदर्शी रहे संत श्री लाल जी महाराज, मोटी कोरल (जि. वडोदरा, गुजरात) में हुई घटना के बारे में अपनी पुस्तक में लिखते हैं- 'संवत् 2021 ज्येष्ठ शुक्ल में लगभग षष्ठी तिथि (15 जून 1964) के दिन भगवान पंचकुबेरेश्वर महादेव की संध्याकाल की आरती के बाद मैं दूर-दूर तक विशाल तट व जलप्रवाह से

सुशोभित माँ नर्मदा के दर्शन करने के लिए पिछवाड़े के चौक में खड़ा था। वहाँ एक युवक भी ऐसे वातावरण की नीरव शांति व भव्यता का पान कर रहा था। उनके हृदय में चमकते हुए सितारों की भाँति प्रश्न उद्भवित होते थे। वहाँ मेरे साथ उनका मिलाप शुरू हो गया। मैंने निकट बैठकर उनसे श्री नर्मदा के तट पर आने का प्रयोजन पूछा: "युवराज ! घर क्यों छोड़ना पड़ा ?"

उत्तर में उन्होंने कहा: "मैं कौन हूँ ? कैसा हूँ ? क्यों आया हूँ ? और अब इस भवसागर से कैसे पार होऊँगा ? यह सब मुझे जानना है।"

इस प्रकार युवक की जिज्ञासा एवं मुमुक्षु-वृत्ति देखकर उन्हें मैं प्रेमपूर्वक रामनिवास (अतिथि-निवास) ले आया।

उन युवक का नाम था श्री आसुमल, वे ही आज हम सबके प्यारे पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू के रूप में विश्वविख्यात हैं। उस समय श्री आसुमल आहार में केवल मुट्ठीभर चने खाकर मनोबल विकसित करते थे। उनके साथ मैंने किन्हीं संतों की बातें कीं। बाद में उन्होंने 40 दिन के अनुष्ठान का मनोरथ बताया।

सच्चे जिज्ञासु होने से जैसे वृक्ष जमीन-पानी के संसर्ग से अंकुरित होकर अपनी सारी आवश्यकताओं को पूरी कर लेता है, ठीक वैसे ही भावपूर्वक श्री आसुमल जी इस अनुष्ठान में तल्लीन रहे। वे प्रतिदिन प्रातः 3 बजे उठ जाते। आधा घंटा बिस्तर पर ही अपने ब्रह्मस्वरूप का चिंतन करते। बाद में अपने साथ लाये हुए कमंडल को लेकर बाहर निकल पड़ते। नित्यकर्म से निवृत्त होकर नर्मदा जी में स्नान करते। 4-4.15 तक तो आसन लगाकर ध्यान में बैठ जाते। फिर दोपहर को हम दोनों मूँग की दाल और गेहूँ की रोटी खाते। प्रतिदिन रात्रि को रामनिवास पर 1 घंटा सत्संग होता। 18 दिन निरंतर यह क्रम चला।

19वीं दिन श्री आसुमल जी ने कहा: "लाल जी महाराज ! रोज सुबह 3 बजे उठ जाता हूँ, दिन में जप करता हूँ इसलिए रात को गहरी नींद आती है। इससे नींद में मेरे पैर में कोई जंतु कुरेद जाता है फिर भी पता नहीं चलता। आज खून भी निकलने लगा था। कहीं उसका जहर तो नहीं चढ़ेगा न !...."

इतना कहकर उन्होंने पैर का पंजा दिखाया तो उसमें सुपारी समा जाये इतना गहरा गड्ढा पड़ गया था ! सब कुछ लाल-लाल दिखता था।

लालू (लाल जी महाराज) को यह देखकर भारी पीड़ा हुई और साथ ही उनकी ईश्वरप्राप्ति की तड़प देखकर मैं गद्गद भी हुआ। ध्यान से देखा तो पता चला कि पैर कुरेदने में कुशल छछूंदर पैर कुरेद जाता था।

[अनुक्रमणिका](#)

मित्र हरगोविन्द पंजाबी को पत्र

श्री आसुमल जी ने मोटी कोरल से अहमदाबाद अपने मित्र हरगोविंद पंजाबी को पत्र लिखा: 'मेरी माँ का स्वास्थ्य ठीक न हो तो मुझे समाचार देना परंतु ध्यान रहे की ईश्वरप्राप्ति के मेरे लक्ष्य में कोई अड़चन न आये। इसलिए परिवार वालों को मेरी जानकारी न देना।'

कुछ दिनों बाद आसुमल जी के नाम हरगोविंद पंजाबी का पत्र आया कि 'सावन मास में सोमवती अमावस्या आ रही है, यदि आप अनुमति दें तो मैं नर्मदा स्नान करने आऊँ।' श्री आसुमल जी ने मुझे ये सारी बातें बतायीं तो मैंने उनकी बात में समर्थन दे दिया। आसुमल जी ने उन्हें आने की अनुमति दे दी।

कुछ दिनों बाद पंजाबी का आसुमल जी को एक तार आया, जो संयोगवश मेरे हाथ में आया। उसमें लिखा था: 'आपकी माँ ज़िद कर रही हैं, उन्हें भी नर्मदा स्नान के लिए आना है। यदि आप हाँ कहें तो उन्हें अपने साथ लेकर आऊँ।'

तार पढ़कर मैंने (लाल जी महाराज ने) श्री आसुमल जी से बात की तो उन्होंने बताया: "महाराज ! मैं माँ की सेवा के लिए सदैव तत्पर रहता हूँ। परंतु मेरा लक्ष्य ईश्वरप्राप्ति का है। यदि मैंने उन्हें यहाँ बुलाया तो मेरे बड़े भाई को पता चल जायेगा। वे व्यापारी बुद्धि के हैं और मुझे भी उसी में घसीटना चाहते हैं। वे मुझे जबरदस्ती घर ले जायेंगे, साधना में आगे नहीं बढ़ने देंगे।"

मैंने कहा: "यदि ऐसी बात है तो भले आप माँ से नहीं मिलना। हम नहीं बतायेंगे कि आप यहाँ हैं परंतु माँ को नर्मदा स्नान की इच्छा है तो उन्हें आने दें। वे 2-3 दिन रहकर चली जायेंगी।" इस पर श्री आसुमल जी ने स्वीकृति दे दी।

बाद में श्री आसुमल जी और पंजाबी की बातचीत से पूरी घटना जानने को मिली थी कि पंजाबी यहाँ आने से पहले माँ महँगीबा (पूज्य अम्मा) का स्वास्थ्य जानने के लिए श्री आसुमल जी के घर गये थे। हालचाल पूछने के बाद उनके मुँह से सहसा निकल गया: "मैं नर्मदा-स्नान करने मोटी कोरल जाने वाला हूँ।"

इतना सुनकर अम्मा बात समझ गयीं कि 'हो न हो मेरा आसु वहीं होगा।' परंतु उन्होंने आसुमल जी से मिलने का भाव व्यक्त होने नहीं दिया और पंजाबी से कहा: "बेटा ! मेरा भी इच्छा है कि मैं नर्मदा स्नान के लिए साथ चलूँ।"

पंजाबी ने टालमटोल की लेकिन माँ का नर्मदा स्नान का आग्रह बना रहा।

अनुक्रमणिका

पूज्य अम्मा जी का आगमन

अमावस्या के 2-3 दिन पहले अहमदाबाद से आसुमल जी की माता जी माँ महँगीबा मोटी कोरल आयीं। उस समय मैं (लाल जी महाराज) अपनी कुटिया के सामने चबूतरे पर खड़ा

था। मेरे पास आकर वे रोती हुई बोलीं- "मेरा आसु आपके पास। मुझे उससे मुलाकात करा दीजिये, मैं तभी जल पिऊँगी।"

मेरा हृदय माँ के रुदन के सामने पिघल गया मैं अम्मा व उनके साथ आर्यी श्री लक्ष्मी देवी के दत्त कुटीर में ले गया। वहाँ श्री आसुमल जी को देखकर पहले तो उनकी मातुश्री बहुत ही रोने लगीं, फिर लक्ष्मी देवी की ओर संकेत करते हुए बोलीं- "मेरा नहीं तो इसका तो विचार करो ! इसका दुःख मुझसे देखा नहीं जाता।"

मुझे समझने में देर नहीं लगी कि श्री आसुमल जी का तो विवाह हो गया है। मैं चौंका और आश्चर्य से लक्ष्मी देवी की ओर देखकर मैंने मन-ही-मन विचार किया कि 'बड़े-बड़े योगी, तपस्वी व ज्ञानी-ध्यानी जिससे आकर्षित होकर वर्षों की अपनी संचित संयम-साधना को ताक पर रख देते हैं, वही धर्मयुक्त, सहज प्राप्त, रूपवती, सुशील, पतिपरायणा नारीरत्न को छोड़ के गुड़ और चने खाकर श्री आसुमल जी ईश्वरप्राप्ति के लिए तड़प रहे हैं ! जमीन पर टाट बिछाकर शयन कर रहे हैं ! धन्य हैं आसुमल ! धन्य है आपका त्याग, धन्य है आपका वैराग्य ! आप निश्चय ही सफल होंगे। आपको ईश्वरप्राप्ति नहीं होगी तो किसको होगी !"

अम्मा श्री आसुमल जी को समझा-बुझाकर अहमदाबाद वापस ले जाना चाहती थी। उनके व लक्ष्मीदेवी के नेत्रों से बहती हुई गंगा-जमुना का करुणाजनक दृश्य देखकर ऐसा कौन पाषाणहृदय मनुष्य होगा कि जिसका हृदय न पसीज उठे ! सभी लोग उनके पक्ष में थे। परंतु केवल श्री आसुमल जी अपने पवित्र निश्चय पर अडिग, शांत व गंभीर मुद्रा में बैठे थे। आखिर मैंने द्रवित हृदय से श्री आसुमल जी को घर वापस न जाने की हठ छोड़ देने के लिए कहा।

तब आसुमल जी (बापू जी) ने दृढ़ता से कहा: "महाराज ! तुम्हारा हमारा नाता भगवान के कारण है। यदि आप हमें भगवान के रास्ते से हटाकर मोह के रास्ते भेजते हो तो आपका-मेरा कोई संबंध नहीं है।"

मैंने कहा: "सच मैं, आपमें बड़ा त्याग है !"

आसुमल जी बोले: "त्याग मुझमें नहीं है। त्याग तो मेरे भाई में है कि परमात्मा को छोड़कर जीवन दाँव पर लगा रहा है। उसमें बड़ा त्याग है। मैं तो भगवान को चाहता हूँ, मुझे उनमें बड़ा राग है। भाई मेरा त्यागी है, मैं रागी हूँ।"

यह सुनकर मैं अत्यधिक गद्गद हो गया। आखिर आसुमल जी का 40 दिन का अनुष्ठान पूरा हुआ। श्री आसुमल जी यहाँ ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण- कुल तीन मास रहे।

उसके बाद मोटी कोरल से उन्हें भावभीनी विदाई देने बहुत स्नेह से मैं तथा पूरा गाँव रेलवे स्टेशन तक छोड़ने गया। उस समय गाँव के लोग भाव में आकर खूब रो रहे थे।

[अनुक्रमणिका](#)

वज्रेश्वरी में आत्मसाक्षात्कार

वे मोटी कोरल से छोटी गाड़ी में मियाँ गाँव-करजण स्टेशन तक पहुँचे। वहाँ से श्री आसुमल जी अपनी अम्मा आदि के साथ अहमदाबाद जाने वाली गाड़ी में बैठे। परंतु गाड़ी चलते ही श्री आसुमल उतर गये और दौड़कर खड़ी मुंबई की ओर जाने वाली गाड़ी में बैठ गये। अम्मा ने बहुत आवाज लगायी पर अब क्या ! गाड़ी चल चुकी थी।

इस प्रसंग का वर्णन करते हुए स्वयं बापू जी बताते हैं- "गुरु जी (साँई श्री लीलाशाह जी) वज्रेश्वरी में किसी शांत जगह में ठहरे थे। हमने वहाँ का पता पा लिया था। हमने अपने मित्र पंजाबी को कहा कि "तीन टिकट अहमदाबाद की लाना आप लोगों के लिए और मेरी एक टिकट लाना वज्रेश्वरी के लिए। माँ को जरा ढाढ़स दिलाने के लिए दिखा देना कि चार टिकट लाये हैं। फिर गाड़ी में मित्र के साथ बिठा दिया माँ को और उनकी बहू को। फिर हम चालू गाड़ी से दौड़कर मुंबई जाने वाली गाड़ी में बैठ गये। तब माँ चीखी, उनकी बहू चीखी, लोग चीखे लेकिन हमें तो जाना था अपने असली घर...। हजारों जन्मों में कई माताएँ मिलीं, पत्नियाँ मिलीं लेकिन अब जब सदगुरु मिल रहे हैं तो मैं दाँव क्यों छोड़ूँ ? सदगुरुदेव के पास जाने की अंतःकरण की प्यास को मैं कैसे बुझाता उनके सिवा ? गाड़ी चली, सुबह पहुँच गये वज्रेश्वरी, लीलाशाह बापू जी घूमने निकले थे। मुझे देखकर बोले: 'आ गये बेटे ! घर नहीं रहे ?' मेरी वाणी तो मौन रही परंतु आँखों ने सब कुछ कह दिया। उसके बाद उन्होंने जो कृपा बरसायी, वह सब वाणी में लाने की चीज़ नहीं है।"

अनुक्रमणिका

सदगुरु ने दिया नया नाम

साँई श्री लीलाशाह जी की पूर्ण कृपा प्राप्त करके आसुमल जी वापस मोटी कोरल आये। उन्होंने मुझे सारी बातें बतायीं कि गुरु जी ने उनका नाम अब 'आशाराम' रखा है।

तब लालु ने (मैंने) पीठ पर हाथ ठोकते हुए कहा: "भाई श्री ! गुरु जी ने आपका नाम आशाराम रखा है, वह तो बहुत श्रेष्ठ है। 'आशा का दास' - जीव और 'आशा का राम' - ब्रह्म।" ऐसा कहकर हम दोनों खूब हँसे।

इस प्रकार विनोद-विनोद में ऐसी बातें होती रहती थीं। रोज रात को आधा घंटा साथ में बैठते, साधु-संतों की चर्चाएँ होतीं, बहुत आनंद आता।

श्री पंचकुबेरेश्वर में तीन मास निवास करने के बाद वे देश के विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करने लगे। डीसा, आबू, गोधरा, हरिद्वार आदि स्थानों पर यात्राएँ होती रहीं। उनके परिचय में जो-जो आते उन सभी को ज्ञान-भक्ति-वैराग्ययुक्त सत्संग का रसपान कराते। जैसे दिन-प्रतिदिन वट के बीज से वटवृक्ष फूलता-फलता है, वैसे ही देखते-देखते उनके सत्संग का प्रभाव अनंत गुना बढ़ता गया। आज अनगिनत साधक उन्हें सदगुरु के रूप में मान रहे हैं।

पूज्य आशाराम जी मेधावी व धर्म के मर्मज्ञ संत हैं, सूक्ष्म विचारक व उत्कृष्ट सत्संगकर्ता हैं। वेदांत का गहरा अभ्यास व स्वानुभव होने से उनका सत्संग-प्रवचन विशेष प्रेरक व प्रभावशाली होता है। इस कारण उनके सत्संग में विशाल संख्या में लोग एकत्र होते हैं एवं जीवन पथ में नूतन दृष्टि पाने के लिए लाखों-लाखों भाई-बहन मोटेरा (अहमदाबाद) एवं अन्य आश्रमों में आते रहते हैं।

एक बार मैंने उनसे पूछा: "आपके कितने आश्रम हैं ?"

बोले: "100 जितने।" (तत्कालीन संख्या)

यह सुनकर मैंने सोचा कि 'वास्तव में संत आशाराम जी के द्वारा परमात्मा कौन सा कार्य करवा रहे हैं वह समझना और समझाना अत्यधिक कठिन है ! मेरी परमात्मा से यही प्रार्थना है कि दैवी आत्मा संत बापू जी दीर्घायु को प्राप्त करें व साधकों को स्वधर्म में सावधान करके परमात्मा का साक्षात्कार करायें।'

अनुक्रमणिका

विनोदी स्वभाव

इतने सारे सत्संग कार्यक्रमों के दौरान भी कभी-कभी आशाराम जी मोटी कोरल आकर एकांत में रहते। उनका संतप्रेम भी अनोखा है ! मैं तो उनके सामने नदी के प्रवाह में बहते हुए तिनके जैसा होने पर भी मुझ पर वे कैसा अनूठा, एकात्मिक प्रेमभाव रखते हैं ! वर्ष में 2-3 बार आकर मुझे भी आत्मा-परमात्मा की बातें बताते, शरीर स्वस्थ रहे इसके लिए सावधान करते एवं प्रेम से खेल-खेल में नाचते और मुझे भी नचाते। नयी-नयी चीजें लाते और अपने हाथों से मुझे खिलाते।

नर्मदा तट पर ध्यान-भजन करके सबको आनंदित करते और प्रतिदिन रात को थोड़ी देर के लिए मेरे से मिलने आते। सत्संग व आत्मज्ञान की चर्चा होती। उस समय अपने साथ वे 1 फुट का लकड़ी का टुकड़ा लाते और कमरे से एक थाली ले लेते। फिर जैसे मारवाड़ी लोग भैरोगीत गाते हैं, ताली बजा-बजाकर फाग गाते हैं, उस प्रकार थाली बजाते और नाचने लगते:

फागणियो¹ आयो, वडला हेठे² गोपी नाचे रे। गोपियो रा श्याम रे....

सांज पड़े दिन आथम्यो³, देवी मगरे⁴ वासो लीधो है।

मगरा माथे मंदर⁵ है जी, मंदर कणरो⁶ लागे जी। मंदर अम्बा रो⁷ है जी।

वाघ⁸ बोले है जी रे, वाघ अम्बा रो है जी। हूँ हूँ बोरे, हूँ हूँ बो..... हुर्रsssss

1 फाल्गुन माह 2 बड़ के नीचे 3 ढल गया 4 टीला 5 मंदिर 6 किसका 7 का 8 बाघ

ऐसा करके झूमने लगते। यह तो एक नमूना है। ऐसे तो कई प्रसंग आये। किसी-न-किसी तरह भगवदीय आनंद की तरफ उत्साह व सरलता से ले जाने का कार्य होना चाहिए, ऐसी उनकी उम्दा आदत है। विनोद के साथ ज्ञानगोष्ठी उनका सूत्र है।

अनुक्रमणिका

परस्पर संयमी जीवन

एकांत साधना हेतु पूज्य बापू जी का कभी हरिद्वार, नारेश्वर (गुजरात) माउंट आबू (राजस्थान) तो कभी मोटी कोरल (गुजरात) जाना होता रहता था।

एक बार आशाराम जी मोटी कोरल में रुके हुए थे तो वहाँ उनकी माँ व धर्मपत्नी आ पहुँची। उस समय का एक प्रसंग है। प्रतिदिन शाम को 5 बजे में और आशाराम जी नर्मदा किनारे जाते थे। नर्मदा में स्नान करके आशाराम जी नदी के तट पर प्रवाह के पास ही बैठकर ध्यान करते थे।

एक बार लक्ष्मीदेवी निवास पर ही चबूतरे पर बैठकर कोई ग्रंथ पढ़ रही थीं। मैंने सोचा कि 'शायद मेरी उपस्थिति के कारण ये लोग एक दूसरे से बात नहीं करते, इन्हें बातचीत का मौका देना चाहिए।' इसलिए मैंने युक्ति की। एक दिन मैं आशाराम जी के साथ नर्मदा स्नान हेतु नहीं जा सका, बाद में गया। वहाँ आशाराम जी एक फर्लांग (660 फीट) दूर ध्यान में बैठे हुए दिखे। मैंने इशारे से लक्ष्मीदेवी को कहा कि "आप भी वहाँ जाइये।" मैंने देखा कि लक्ष्मीदेवी उस ओर गयीं तो सही परंतु आशाराम जी से भी आगे बहुत दूर चली गयीं। वे आशाराम जी के नज़दीक भी नहीं गयीं और फिर बाद में अपनी कुटीर में वापस चली गयीं।

बाद में जब लक्ष्मीदेवी से आशाराम जी के पास न जाने व बातचीत न करने का कारण पूछा गया, तब उन्होंने बहुत सुन्दर जवाब दिया: "इनके (बापू जी के) के ध्यान भजन में विघ्न डालना तो पाप ही है न ! मुझे तो सेवा करनी है। इनके अवलम्बन से अपनी साधना सिद्ध करना यही मेरा धर्म है।"

मुझे हुआ कैसे सुन्दर विचार हैं ! उनके चित्त में मिलना, बात करना अथवा साथ में बैठना - ऐसे कोई भी संस्कार नहीं थे इसलिए वे तो दूर से निकलकर सीधी चली गयीं। इससे स्पष्ट होता है कि लक्ष्मी देवी वैराग्य की मूर्ति हैं, साधना में सहयोग देने वाली पतिव्रता नारी हैं।

बाद में एक बार अकेले में आशाराम जी ने मुझसे कहा था: "मेरी यह जो आत्मनिष्ठा व इन्द्रिय विजय का भाव साधना में उच्च गति पा रहा है, इसका श्रेय मेरी धर्मपत्नी को भी जाता है।"

दोनों का परस्पर का कैसा अनोखा संयमी जीवन है ! हमारे लिये तो दोनों ही परम वंदनीय हैं। (इतना कहकर लाल जी महाराज ने अहोभाव में भरकर आँखें बंद करके प्रणाम किये।)

अनुक्रमणिका

कैसा निर्लेप हृदय !

एक बार श्रावण मास में संत आशाराम जी यहाँ आये। पास में दो जगहों पर उनके सत्संग-कार्यक्रम थे। वहाँ मुझे अपने साथ ले गये, तत्पश्चात् दोनों नदी की ओर गये। वहाँ दूर तक चलने के बाद हम बालू में बैठ गये।

आशाराम जी ने कहा: "हम तो सत्संग करते-करते ही आये हैं और रात को सोने में भी देर हो गयी थी। इसलिए हमें तो नींद आ रही है।"

ऐसा कहकर वे मेरी गोदी में सिर रखकर वहीं लेट गये। नीचे बालू थी, छोटे पत्थर भी थे। ऐसे में 1-2 मिनट में उन्हें अच्छी, गहरी नींद आ गयी।

यह देखकर मुझे विचार आया, 'बड़े-बड़े सत्ताधीश, मंत्री भी इनकी मुलाकात के लिए तरसते हैं, इनके आगे हाथ जोड़ते हैं.... इतने सारे आश्रम हैं, लाखों-लाखों लोगों के सद्गुरु हैं और इस प्रकार बालू पर निश्चिंतता से सो सकते हैं !' यह बताता है कि उनका हृदय इन सभी लौकिक व्यवहारों से कितना निर्लेप, निर्मल रहा है ! यह उनके हृदय की सरलता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।'

अनुक्रमणिका

आपके पत्र

आत्मज्ञान से सराबोर पूज्य बापू जी के पत्र

श्री लाल जी महाराज आगे बताते हैं- "आशाराम जी बापू ने मुझे 30-40 पत्र भी लिखे थे, जिन्हें मैंने एक नोटबुक में मधुर संस्मरणों के रूप में लिखकर रखा है। उन्हें पढ़ने से संत आशाराम जी का जीवन युवावस्था में भी कैसा ज्ञानमय था, यह समझ में आता है। सारे पत्रों में खेल-मौज में उच्च कोटि की ज्ञानगोष्ठी लिखी है।"

प्रस्तुत हैं उनमें से कुछ पत्र:

1 दिनांक: 9-7-1970

प्रति

परमात्मस्वरूप, रामस्वरूप में मस्तराम श्री लाल जी महाराज !

नहीं है राम दूर तुझसे, खुदी को मिटा खुदा हो जा।

शरीर को सत्ता-स्फूर्ति अर्पित करने वाली चैतन्यशक्ति के चमत्कार से आशाराम नैनीताल से कानपुर 'विराट रामायण वेदांत सम्मेलन' में वक्ता के रूप में गया था। इस सम्मेलन में देश के कोने-कोने से विद्वान, संत, कवि, शास्त्रकार, महामंडलेश्वर एवं शंकराचार्य आदि महानुभाव पधारे हुए थे। यह सम्मेलन 7 दिन तक चला। कानपुर की सत्यप्रेमी जनता के शुभ भावों से आधा घंटा आध्यात्मिक आनंद में सराबोर होने का अवसर श्रोता भगवान और आशाराम को प्राप्त हुआ। लोग बहुत ही भाव से आध्यात्मिक ज्ञान सुनते थे।

वात्रक नदी के तट पर उत्कंठेश्वर एवं माउंट आबू जाने का शायद संयोग होगा। प्रारब्ध इस शरीर को जैसा घुमाये उसमें वाह-वाह !.... आपके स्नेहभरे पत्र की खूब भावना होती (प्रतीक्षा) रहती है।

वाह रे वाह ! लालों के लाल बादशाह ! जय भक्तिमती श्रीकृष्णा बहन (रामनिवास में आने वाले अतिथियों के भोजन आदि की व्यवस्था करने वाली बहन) व अन्य कुबेरेश्वरवासी मेरे प्रभु ! अभी 51 दिन तक एक ही स्थल पर रहना पड़ेगा। केवल दूध पर रहना है, 24 घंटे मौन।

एकादशी व पूनम पर एक-एक घंटा बोलेंगे। अब तो अपने प्रियतम को छोड़कर दूसरा विचार भी अच्छा नहीं लगता। क्या करूँ

लाख चौरासी के चक्कर से थका, खोली कमर।

अब रहा आराम पाना, काम क्या बाकी रहा।।

जानना था सोई जाना, काम क्या बाकी रहा॥

राम।

आशाराम

શ્રી લીલાશાહ આશ્રમ, નવા ડીસા

အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့

અનુક્રમણિકા

5 दिनांक 29-5-1971

परम आदरणीय श्रीरामस्वरूप

श्री लाल जी महाराज.

लाल बादशाह ! आपका निजस्वरूप हरिद्वार में गंगा की गूँजती हुई लहरों में स्नान करते वक्त आपको अंतःकरण से बुलाता है: 'पधारो!...' यहाँ का वातावरण अनोखा है। शाम के समय माँ गंगा जी के अलग-अलग किनारों पर अलग-अलग असंख्य मौला - कोई योगमस्त, कोई भोगमस्त (खान-पान आदि में मस्त), कोई इधर मस्त, कोई उधर मस्त.... सब अपनी-अपनी मस्ती में माता गंगा का स्वच्छ जलपान, वायुपान, मदिरापान करके डोलते रहते हैं। यह दारु बोटल से नहीं निकलती बल्कि प्रियतम (परमात्मा) के प्रसादरूपी ग्रंथों से निकलती है। जय आत्मदेव !

आशाराम

सिंधी पाठशाला, कनखल, हरिद्वार

အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့

6 दिनांक 14-2-1973

परम पूज्य श्री लाल जी महाराज,

साबरमती के किनारे मोटेरा गाँव के बियाबान (निर्जन स्थान) में एकांत वातावरण में 4 कुटीर बाँधे हैं और ऋषि आश्रम जैसा बना है। श्री राम जी की कृपा से एक महीने के अंदर बना है। श्री राम आपसे अभिन्न हैं, वैसे ही आप मुझसे अभिन्न हैं। वाह राम ! श्रीराम राम राम....
ॐ आनंद....

आशाराम

मोटेरा आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद

အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့

परम आदरणीय श्री लाल जी महाराज,

ॐ आनंद.... आनंद.... खूब आनंद....

મોટેરા આશ્રમ, સાબરમતી, અહમદાબાદ

အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့

परम पूजनीय श्री लालाराम,

मोटी कोरल

आपके निजस्वरूप अंतरतम श्री राम को अवधी नमस्कार !

जगजाहिर समाचार पत्र द्वारा लिख रहा हूँ। पूज्यपाद गुरु भगवान (साँईं श्री लीलाशाह जी महाराज) के शरीर की अस्वस्थता का समाचार दिनांक 2-11-73 के दिन मिला। तुरंत पालनपुर जाने का हुआ। उनके शरीर की हालत कमजोर होते हुए भी वे पूर्ण स्वस्थ भाव में विराजमान थे। दिनांक 5-11-73 के दिन शरीर की पीड़ा अधिक बढ़ी। सुबह 8-40 बजे वे ब्रह्मलीन हुए। भारतभर में समाचार वायुवेग से फैल गया। समाधि के निमित्त रात को 12 बजे कच्छ पहुँच गये। पूरी रात रामधुन वगैरह की। सुबह कच्छ में अंतिम यात्रा निकाली ताकि पूज्य श्री के अंतिम दर्शन सभी को मिलें।

આશારામ

အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့

9 दिनांक 31-12-1973

परम पज्य श्री लालाराम,

पवित्र सेवा में, मोटेरा से आपके आशाराम के श्रीराम.... राम....

लालाराम ! आपश्री की अहैतुकी कृपादृष्टि से मैं अपने को धन्य मान रहा हूँ कि आपश्री के समान सच्चे संत की मेरे प्रति कैसी दिव्य, उच्चतम भावनाएँ हैं ! ओ पवित्र हृदय ! आपके प्रत्येक शुभ संकल्प में अनंत ब्रह्मांडनायक प्रभु ही हैं। भला, प्रभु की इच्छा से आशाराम की

उन्नति हो और जीवन जीकर दिखाने में सफल हो जाय अथवा मरने में भी सफल हो जाय, अन्यथा मरने जीने से अपने निजस्वरूप को निर्लेप अनुभव करे तो इसमें क्या आश्चर्य !

एकांत में थोड़ी विश्रांति लेने का विचार कर रहा हूँ परंतु प्रवृत्ति पीछा ही नहीं छोड़ती। भारत के युवाओं की हालत देखकर अपना कर्तव्य लगता है कि समाज के स्वरूप में विराजमान श्री नारायण की सेवा करें। इस हेतु से शायद प्रवृत्ति बढ़ रही है और शांत हृदय की अवस्था को याद करके निवृत्ति लेने की चाह होती है। जितना हो सके संतों के शुभ संकल्प सत्य होकर इस शरीर से सेवा के कार्य हों, उसमें मेरी ना नहीं है और न हों तो उसमें मेरा आग्रह नहीं है।

हमारी न आरजू है न जुस्तजू है।

हम राज़ी हैं उसमें, जिसमें तेरी रजा है।।

ॐ शांति.... ॐ शांति.... ॐ शांति.....

આશારામ

मोटेरा आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद

အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့

અનુક્રમણિકા

10 दिनांक 27-2-1974

परम पूज्य मेरे मधुर आत्मदेव श्री श्री लालाराम,

आपश्री का कृपा-पत्र अभी मिला। धन्य है भारतभूमि, जो सच्चे आत्मचिंतकों, श्री राम-भक्तों, रामस्वरूपों को जन्म देती है !

अब मौन और एकांत बहुत प्रिय लग रहा है। तथापि ऋषि परम्परा को समझने वाले बहुत लोग कहते हैं कि 'अभी आपको अपनी संस्कृति का प्रचार करके डूबते हुए जनसमूह को संसाररूपी सागर से पार उतारने के लिए नौकारूप बनना अत्यंत आवश्यक है।' मुझे तो अंतर की आज्ञा सब ठीक करा रही है। ॐ.... ॐ.... राम..... राम....

आशाराम

મોટેરા, સાબરમતી, અહમદાબાદ

အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့

11 दिनांक 30-3-1974

परम पूज्य श्री लाल जी महाराज,

आपश्री की पवित्र याद बार-बार आया करती है। प्रवृत्तिवाला जीवन जीने की इच्छा न होने पर भी जीना पड़ता है। पूज्य गुरुदेव का जयंती-महोत्सव बीतने के बाद चैत्र शुक्ल द्वितीया, श्री वरुण अवतार दिवस सिंधी भाइयों के भाव से आश्रम में मनाने का आयोजन किया। इसमें 4-5 हजार लोगों के भोजन तथा हरि-कीर्तन, भजन, सत्संग तथा अन्य धार्मिक प्रवृत्ति जैसे कि

ब्राह्मण बालकों के समूह का ब्राह्मण द्वारा उपनयन संस्कार किया गया। 3-4 विवाह कार्यक्रम सादे जीवन को ध्यान में रखकर आश्रम द्वारा कराये गये।

इससे पूरे अहमदाबाद के सिंधी भाइयों में प्रेम, सरलता, सादगी, श्रद्धा, परोपकार, परस्पर मित्र-भावना की वृद्धि देखने में आयी। अब आबू में निवृत्ति का आनंद मनाने का प्रयास करूँगा।

आशाराम

मोटेरा आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद

အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့

12 दिनांक 27-4-1974

परम आदरणीय रामस्वरूप श्री लालाराम,

यहाँ का शांत, मनोहर वातावरण मन तथा शरीर को स्वयं ही आत्माराम में आकर्षित कर रहा है। आप सरीखे सज्जन संतों के शुभ संकल्पों के कारण ही अंतर्मुख होने की इच्छा होती है। मुझे आशा है कि आप आनंदघन, निजस्वरूप श्रीराम में मस्त होंगे ही, मेरे लिए भी श्रीराम-मस्ती की तरंगें भेजने की मेहरबानी करना।

आशाराम

माउंट आबू, नलगुफा

အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့

13 दिनांक 15-6-1974

परम पूज्य श्री लालजी काका¹,

वाह भाई वाह ! हरि हरि बोल.....

हरि हरि बोल बाबा हरि हरि बोल...

बाबा जी, आज शाम को एकांत में अचानक आपको पत्र लिखने की इच्छा हुई। आपका प्रेरणाभरा पत्र मिला था। 2-3 दिन के अंतर से फिर-फिर से आपका ही पत्र पढ़ने का मानो स्वभाव हो गया है। परंतु ज्यों ही स्वरूप का स्मरण होता है, त्यों ये विचारों की आँधी कहीं दिखती ही नहीं। क्योंकि आपका वास्तविक आत्मा परब्रह्म-परमात्मा होने से सर्वव्यापक है। अतः मुझसे अलग रहने की आपमें ताकत कहाँ है ? मेरे से लालाराम दूर हों तो मिलूँ न ? मिले हुए को क्या नये सिरे से मिला जा सकता है ? यह तो बालक-बुद्धि से ही सब होता है। आईने में बच्चा अपना मुख देखकर उससे मिलने जाता है परंतु अंत में तो अपने सिवा कुछ हाथ नहीं आता। वैसे ही संतों का अनुभव है, वह अबाधित ही है।

यहाँ बहुत ही एकांत और शांत, पवित्र एवं रमणीय, ईश्वरीय दिव्यताभरा वातावरण देखकर एक संत को निवास करने की इच्छा हुई। लगभग 20 दिन से रुके हैं। भजनानंदी हैं। (मुझे उनकी) सेवा का लाभ मिलता है और आपकी तरह पुस्तक पढ़ाकर (उनसे) रहने का

किराया वसूल कर लेता हूँ। मेरे जिगर के टुकड़े को पत्र लिखते हुए मुक्त हास्य एवं आनंद अनुभव कर रहा हूँ। अंत में पत्र की राह देखता तुम्हारा निजस्वरूप....

आशाराम

माउंट आबू

အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့

1 काका (चाचा) सम्बोधन करने का तात्पर्य पुत्र नारायण साँई के जन्म का संकेत है। अर्थात् लाल जी महाराज को काका कहने वाला जन्मा है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

14 दिनांक 19-9-1974

ॐ आनंद ! ॐ आनंद ! ॐ आनंद !

हे त्रिभुवनपति ! साक्षात् परब्रह्म नारायण, लाला काका के स्वरूप में बीड़ा उठाने वाले हे
नटवर ! जय श्रीराम राम !

आपके दर्शन मोटी कोरल स्टेशन पर होते क्योंकि आप विदा देने उस तरफ पधारे थे किंतु दुर्भाग्यवश आपके विदाई पर दर्शन नहीं हुए।

ओ होsss.... भूल गया। भोला भूल गया.... आपके स्वरूप के दर्शन का तो किसी भी क्षण में अभाव है ही नहीं। किंतु लाला काका के शरीर तथा भगवती कृष्णा बहन के स्वरूप में बसने वाली अन्नपूर्णा जी के दर्शन न हुए, यह भूल हुई है। अस्तु, आपका समझकर नजरअंदाज करना। वाह-रे-वाह ! लालाराम !

पत्र आज लिखूँ, कल लिखूँ... करते-करते एक सप्ताह आज पूरा हुआ और कलम कहती है कि तत्त्वमसि। 'वह तू है।' परंतु उस बेचारी को पता नहीं है कि 'मैं वह हूँ।' अररर ! मैं और तू भी कल्पना ही है। भाई ! हम न तूम, दफ्तर गुम। कैसा अभेद आनंद !

आशाराम

મોટેરા આશ્રમ, સાબરમતી, અહમદાબાદ

3333333333333333

15 दिनांक 25-11-1974

श्री श्री लाल जी महाराज,

श्री लाल जी महाराज के स्वरूप में विराजमान मेरे आत्मदेव !

हरिद्वार में 20 दिन से रुका हूँ। यहाँ ठंडी का जोर ज्यादा है। कई भाइयों को कंटान-कम्बल आदि प्रिय लगते हैं, मानो परिक्रमवासी न हों। ईश्वर की लीला निराली है।

एक ब्रह्मनिष्ठ सत (श्री घाटवाले बाबा) के साथ आपके जैसी मैत्री हो गयी है। उनका स्नेह झेलने में जो आनंद आता है, उसका वर्णन करने में तो शेषनाग भी थक जायें। वैसे ही ताजपुरावाले श्री नारायण बापू की भी पवित्र मैत्री का लाभ यहाँ 15 दिन मिला।

आशाराम

အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့

18 दिनांक 19-6-1976

परम पूज्य लाल जी महाराज को मेरा जरा भी प्रणाम नहीं। क्यों भाई, बराबर है न ! प्रणाम तो भिन्नता में होते हैं। (बोध चाहि जाको सुकृति, भजत राम निष्काम। सो मेरो है आत्मा, काकूं करूं प्रणाम।।.... मुझसे भिन्न और कोई वस्तु है ही नहीं जिसको मैं प्रणाम करूँ - 'विचार सागर' वेदांत ग्रंथ) और यदि प्रणाम का लालच हो तो मुझसे अलग होकर दिखाओ लालाराम !

आशा+राम = लाला + राम

राम + राम = राम

लाला उडे, आशा उडे,

रह गये राम के राम।

आशाराम

အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့

19 दिनांक 28-6-1976

परम पूज्य श्री लाल जी महाराज,

मेरे लालाराम ! जय श्रीराम राम राम।

बहुत दिनों से लाला काका को पत्र लिखूँ ऐसा होता था परन्तु दूसरा विचार आता कि अरे ! लालाराम मझसे अलग हैं ही कहाँ ?

प्रेम पतिया¹ तब लिखूँ जब पिया² परदेश।

तन में, मन में, जन में, ता को क्या संदेश ?

वाह-रे-वाह ! छैल-छबीले, रंग-रङ्गीले, अलबेले मस्ताने.... प्यारे मेरे ! सब हैं तेरे.... हरि के द्वार में आयी हुई एकांत गंगा के किनारे तपोनिधि संत की साधना कुटीर में थोड़े दिन रुका।

अभी-अभी नीलधारा की ओर घूमकर आया। कमरा बंद करके मस्ती में... भजन एवं इधर-उधर स्वरूपानंद में अठखेलियाँ करता मन.... आनंद के उल्लास से आपश्री को पत्र लिखने बैठ गया हूँ। लिखा वह 'न लिखा' हो जायेगा। वाह-रे-वाह !

1 पत्र 2 परमात्मा

ना शोक ना ही मोह ना संताप करना चाहिए।

निःशंक हो, निर्दवन्दव हो, सुख से विचरना चाहिए॥

नर देह दुर्लभ पाय कर, भव सिंधु तरना चाहिए।

अब तक मरा सो मर लिया, अब तो न मरना चाहिए॥

ऐसी है आप सरीखे संतों की ललकार ! मेरे लाल जी ! कैसा है ? याद आता है न चारों तरफ का दृश्य ? नारेश्वर जाते समय बीच में हम रुके थे।

ज्यां ज्यां नजर मारी पडे यादी भरी त्या आपनी।

अररर.....! प्यारे के साथ शर्तबाजी, व्यापार ! नहीं-नहीं, यह तो उस (परमात्मा) के साथ लाड़-प्यार है भाई लाड़ ! नहीं-नहीं, लाड़ व लाड़ला और लाड़ लड़ाने वाला अब अलग रहे ही नहीं तो राम राम राम...

हरिद्वार

अनुक्रमणिका

हम (पूज्य बापूजी) यात्रा पर गये थे। पंडों की दक्षिणा दी तो बोले:

मैंने कहा: "मेरा गोत्र तो ब्रह्म है।"

बाह्य गोत्र याद रहे तो ठीक है लेकिन मूल गोत्र तो ब्रह्म है सबका। सब ब्रह्म में से तो निकले हैं। तुम्हारा मूल गोत्र परमात्मा है, मूल कुल भी परमात्मा है। कितनी खुशखबर है कि तुम्हारा कुल-गोत्र परमात्मा है ! ॐ..... ॐ....

शरीर होते हुए भी उससे अतीत ऐसे आत्मज्ञानी में अनगिनत प्रणाम !

અનુક્રમણિકા

पूज्य बापू के एक और मित्रसंत थे श्री नारायण बापू। जो अनेक दिव्य शक्तियों के स्वामी थे, जिनका आशीर्वाद पाकर राष्ट्रपति जैलसिंह धन्य हुए थे, उन श्री नारायण बापू ने

गुजरात में बड़ौदा के आगे हालोल तहसील के ताजपुरा गाँव को कर्मभूमि बनाकर उस अंजलिभर गाँव में सेवा की धूनी प्रज्वलित की थी।

पूज्य बापू जी अपने इन मित्रसंत के साथ के आत्मीय संबंधों की चर्चा करते हुए बताते हैं-

मन का प्रभाव तन पर

ताजपुरा में मेरे मित्रसंत नारायण स्वामी रहते थे। उनके आश्रम का नाम है नारायण धाम। जब नारायण धाम नहीं बना था और वे साधना करते थे तब वहाँ एक छोटा-सा मंदिर था। उस मंदिर का पुजारी रजनी कला स्नातक था। उसने मुझे बताया: "बापू ! बापू (नारायण बापू) का तो कुछ कहा नहीं जा सकता।"

मैंने पूछा: "क्या हुआ ? जरा बताओ।"

पुजारी: "मैं एक दिन शाम को मंदिर बंद करके शटर को दो ताले लगाकर घर चला गया क्योंकि जंगल का मामला था और तब आश्रम इतना विकसित नहीं था। सुबह जब शटर खोला तो देखा कि मंदिर के अंदर बापू (नारायण स्वामी) शिवलिंग को आलिंगन करके बैठे हुए थे ! मैं तो यह देखकर चकित रह गया कि बापू मंदिर के अंदर कैसे ? मैंने तो मंदिर बंद करने से पहले अंदर एक बिल्वपत्र और फूल तक नहीं छोड़ा था फिर बापू को अंदर बंद करके कैसे चला गया, मुझे कुछ पता नहीं है !"

मैंने कहा: "ऐसा नहीं होगा, कुछ राज होगा।"

पुजारी: "कुछ राज ही है। मैं तो मंदिर की सफाई करने के बाद ताला लगाकर घर चला गया था।"

वे तो मेरे मित्रसंत हैं। मैंने उनसे पूछा: "यह सब कैसे हुआ था ? आप संकल्प करके शिवालय में पहुँचे थे कि आपने योग का उपयोग किया था ? आप ऋद्धि-सिद्धि के बल से वहाँ पहुँचे थे या भगवान शंकर स्वयं आपको पकड़कर अंदर डाल गये थे ? सच बताओ।"

नारायण स्वामी ने कहा: "यह तो मुझे पता नहीं लेकिन प्रभु का ऐसा तीव्र चिंतन हुआ कि मैं नहीं रहा। जब सुबह हुई और पुजारी ने मंदिर खोला तब मुझे भान हुआ कि 'मैं इधर कैसे ?'

फिर तो मैं 'प्रभु.....!!' करके एक मील तक दौड़ता चला गया।"

....तो मानना पड़ेगा कि आपका मन जिसका तीव्रता से चिंतन करता है वहीं आपका तन भी पहुँच जाता है।

[अनुक्रमणिका](#)

हे भगवान ! दया कर....

आबू में एक छोटी सी गुफा थी - नल गुफा। जिस गुफा में राजा नल ने तप किया था उस नल गुफा में मैं रहता था। वहाँ नारायण बापू समय-समय पर आते और साथ में रहते थे।

वे भजनानंदी संत ऐसे थे कि मौज में आकर बोल पड़ते थे: "हे भगवान ! दया कर। दया कर...." उठते-बैठते इस प्रकार बोलते रहते थे, उनकी ऐसी मधुर आदत थी।

एक बार वे इस प्रकार बोले तो मैं उठकर सामने खड़ा हो गया और बोला: "क्या पूरा दिन बोलते रहते हो: 'दया कर, दया कर, दया कर....' सुबह से रात तक 'दया कर, दया कर....।' वह कोई तुम्हारा नौकर है ? उसकी मौज आयेगी तो करेगा।"

नारायण बापू मुझसे बड़ी उम्र के थे। वे मेरे सामने आश्चर्यपूर्वक देखने लगे तो मैं खूब हँसा। वे बोले: "चतुराई करते हो ?"

उन्होंने दम मारा तो मैं और हँसा।

वे बोले: "क्यों हँसते हो ?"

मैं बोला: "तुम्हारी ताकत नहीं है....!"

महाराज पहुँचे हुए थे, अदृश्य होने की सिद्धियाँ थीं उनके पास और जो भी संकल्प करते थे वह सफल होता था, यह भी मैं जानता था। ऐसे सिद्धपुरुष थे।

तो मेरी ओर देखने लगे। वे जानते थे कि मैं उनकी ताकत को जानता हूँ। मैंने कहा: "आप अहित कर ही नहीं सकते।"

फिर वे भी खूब हँसने लगे। ऐसे आप भी कभी-कभी भगवान को चुनौती दिया करो कि 'महाराज ! आप हमारा अमंगल करने में अनजान हैं, आपकी ताकत नहीं कि हमारा बुरा कर सको।'

संतों के साथ किया हुआ विनोद भी बड़ा मजेदार हो जाता है। 101 वर्ष तक इस धरती पर रहने वाले, अदृश्य होने के साथ अनेक दिव्य शक्तियों के स्वामी पूज्य नारायण बापू 17 नवम्बर 2007, कार्तिक शुक्ल सप्तमी की सुबह 9-20 बजे ब्रह्मलीन हो गये। इन दिव्य विभूति के अंतिम संस्कार के अवसर पर पूज्य बापू जी ने स्वयं ताजपुरा उपस्थित होकर अपने इन मित्रसंत को भावपूर्ण श्रद्धांजलि दी थी।

अनुक्रमणिका

महाभारत (उद्योग पर्व: 10,23) में आता है:

सकृत् सतां संगतं लिप्सितव्यं ततः परं भविता भव्यमेव।

नातिक्रामेत् सत्पुरुषेण संगतं तस्मात् सतां संगतं लिप्सितव्यम्।।

'एक बार साधु-पुरुषों की संगति की अभिलाषा अवश्य रखनी चाहिए। साधु पुरुषों का संग प्राप्त होने पर उससे परम कल्याण ही होगा। साधु-पुरुषों के संग की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। अतः संतों का संग मिलने की अवश्य इच्छा करे।'

पूज्य बापू जी के मित्र संत पूज्य अखंडानंद सरस्वती जी के प्रेरक प्रसंग

इंदिरा गांधी की गुरु आनंदमयी माँ जिनके चरणों में बैठकर सत्संग सुनती थीं, वे वृंदावनवाले स्वामी अखंडानंद जी महाराज मेरे मित्रसंत थे। हमारे बीच अत्यधिक स्नेहभाव व आत्मीय संबंध थे। वे अहमदाबाद आश्रम में भी पधारे थे।

वे बे-सिर पैर की बातें नहीं करते थे अपितु शास्त्र-पद्धति से, संगति से बोलते थे। गीता प्रेस (गोरखपुर) के सत्साहित्य हेतु लेख लिखते थे। उनके लेख विद्वत्-समाज में आदर की नज़र से पढ़े जाते हैं। वे तात्त्विक दृढ़ भक्तिमार्गी थे लेकिन वेदांत-रहस्य भी स्पष्ट कर देते थे। वे कई उच्च कोटि के साधु-संतों से मिले थे। स्वामी अखंडानंदजी, हरि बाबा, हाथी बाबा व आनंदमयी माता मित्रसंत थे।

स्वामी अखंडानंद जी ने साधनाकाल में एक उच्च कोटि के संत से मंत्रदीक्षा प्राप्त कर अनुष्ठान किया, जिससे स्वयं भगवान ने उनको तत्त्वज्ञान की उन्मुख किया। शास्त्र के रहस्य इस ढंग से खुलते जाने लगे जैसे पर्दों की पर्त-पर-पर्त फटती जा रही हो। अखंडानंद जी कहते हैं- "शास्त्र ने मेरे सम्मुख अपने को निवारण कर दिया है। मैं शास्त्र और धर्म की बात को हितकारी, युक्तियुक्त और उचित मानता हूँ।"

अनुक्रमणिका

यह भजन का विघ्न है, इससे सावधान !

श्री अखंडानंद जी अपने साधनाकाल की एक घटना बताते हुए कहते हैं-

"मैं लगभग 17 वर्ष का था। घर से भागकर एक महात्मा के पास चला गया। एक महीना उनके पास रहा। जब मैं माला लेकर भजन करने बैठता तो ध्यान में मेरी माता जी आँखों से टपाटप आँसू गिराती हुई सामने आ जातीं। बोलतीं- "बेटा ! हम तुम्हारे लिए बड़े दुःखी हैं। जल्दी घर आ जाओ।"

पत्नी भी सामने आती। हमको लगता, 'अरे ! बड़ा प्रेम होगा, लोग हमारे लिए रोते हैं।'

मैं महात्मा जी से आज्ञा लेकर चलने लगा तो उन्होंने कहा: "देखो, वहाँ तुम्हारे लिए कोई दुःखी नहीं है। यह विघ्न ही है, जो तुम्हें भजन में से अलग कर रहा है।"

लेकिन मैं लौट गया घर। गया तो घर के लोग खूब खुश थे। मालूम हुआ कि माता जी भी नहीं रोती थीं, पत्नी भी नहीं रोती थी। क्यों ? अकसर मैं हर साल महीने-दो-महीने के लिए अपने बाप-दादों के शिष्यों के यहाँ जाता था। बहुत से कपड़े, रुपये लेकर लौटता था। इस साल भी जब मैं घर से गया तो हमारे घरवालों को यह कल्पना हो गयी कि 'वहीं शिष्यों में गये होंगे। बहुत-सा कपड़ा, रुपया लेकर आर्येंगे।' बहुत खुश थे।

मैं पहुँचा तो पूछा: "सामान कहाँ है ?"

मैंने कहा: "सामान तो हमारे पास लोटा के सिवाय कुछ नहीं है।"

वे बोले: "इक्के (घोड़ागाड़ी) पर लदकर आ रहा होगा।"

"अरे भाई ! कुछ नहीं है। मैं तो कर्णवास गया था। गंगा किनारे अमुक महात्मा के साथ था, भजन करना था।"

अब सबने रोना शुरू किया कि 'हाय हाय ! लड़का बिगड़ गया !'

हमारे लौटने के बाद घरवालों ने रोना शुरू किया। जब तक मैं महीनेभर बाहर था, कोई एक दिन भी नहीं रोया। अब हमें यह होवे कि 'हमारे न रहने पर इनको दुःख हुआ नहीं और पैसे से तो इनका वियोग भी नहीं हुआ। घर में पैसा था और चला गया ऐसा भी नहीं था। केवल आने की उम्मीद बँधी थी। नहीं आया और रोने लगे। इसका मतलब हुआ कि घर में किसी को किसी से प्रेम नहीं है। अपने मन में ही यह कल्पना होती है कि ये हमारे बड़े प्रेमी हैं।" यह भजन का विघ्न है और साधकों को इससे सावधान रहना चाहिए।

अनुक्रमणिका

दक्षिणा में माँ !

एक बार अखंडानंद जी के सत्संग की पूर्णाहूति पर माँ आनंदमयी सिर पर थाल लेकर गयीं। उस थाल में चाँदी का शिवलिंग था। वह थाल अखंडानंद जी को देती हुई बोलीं- "बाबा जी ! आपने कथा सुनायी है, दक्षिणा ले लीजिये।"

अखंडानंद जी ने दक्षिणा में वह शिवलिंग स्वीकार कर लिया।

माँ- "बाबा जी ! और भी दक्षिणा ले लो।"

अखंडानंद जी: "माँ ! और क्या दे रही हो ?"

"बाबा जी ! दक्षिणा में मुझे ले लो न !"

अखंडानंद जी ने हाथ पकड़ लिया एवं कहा:

"ऐसी माँ को कौन छोड़े ? दक्षिणा में आ गयी मेरी माँ !"

ऐसे थे सहजता, सरलता की मूर्ति और ब्रह्मनिष्ठा व ब्रह्मज्ञान के धनी !

अनुक्रमणिका

हनुमान जी ने वरदान दिया

प्रसिद्ध पंडित रामवल्लभशरण की महानता के बारे में संत जानकी जी (जो घाटवाले बाबा के दर्शन हेतु जाते थे) स्वामी अखंडानंद जी को बताते हैं-

एक बार रामवल्लभशरण किन्हीं संत के पास गये।

संत ने पूछा: "क्या चाहिए ?"

रामवल्लभशरण: "महाराज ! भगवान श्रीराम की भक्ति और शास्त्रों का ज्ञान चाहिए।"

उनकी ईमानदारी की माँग थी। सच्चाई का जीवन था। वे कम बोलने वाले थे। भगवान के लिए तड़प थी।

संत ने पूछा: "ठीक है। बस न ?"

"जी, महाराज !"

संत ने हनुमान जी का मंत्र दिया। वे एकाग्रचित्त होकर तत्परता से मंत्र जपते रहे। हनुमान जी प्रकट हो गये, बोले: "क्या चाहिए ?"

"आप भगवत्स्वरूप के दर्शन तो हो गये, शास्त्रों का ज्ञान चाहिए।"

"बस, इतनी सी बात ? जाओ, तीन दिन के अंदर जितने भी ग्रंथ देखोगे उन सबका अर्थसहित अभिप्राय तुम्हारे हृदय में प्रकट हो जायेगा।"

वे काशी चले गये और काशी के विश्वविद्यालय के ग्रंथ देखे। वे बड़े भारी विद्वान हो गये। यह तो वे ही लोग जानते हैं जिन्होंने उनके साथ वार्तालाप किया और शास्त्र विषयक प्रश्नोत्तर किये हैं। दुनिया के अच्छे-अच्छे तत्कालीन विद्वान उनका लोहा मानते हैं।

अनुक्रमणिका

संसारी मोह से छूटने की युक्ति बतायी

स्वामी अखंडानंद जी द्वारा लिखित साहित्य 'पावन प्रसंग' में उनके जीवन का एक संस्मरण आता है:

श्री गणेश प्रसाद रस्तोगी नाम के एक भक्त थे। अपनी कपड़ों की दुकान पर बैठकर वेदांत-ग्रंथों का स्वाध्याय करते-करते उनके मन में वैराग्य उदय हुआ। घर में माता, पत्नी, पुत्र थे, अच्छा व्यापार था। कोई कमी नहीं थी परंतु बुद्धि में निश्चय हो जाने पर भी वैराग्य टिकता नहीं था। कई बार घर से जाते, कषाय (गेरुआ) वस्त्र भी धारण कर लेते परंतु कुछ दिनों बाद लौटकर आ जाया करते।

एक दिन सूर्यास्त के समय में (स्वामी अखंडानंद जी) गंगातट पर बैठा था। गणेश जी फफक-फफक कर रोने लगे। कहने लगे: "पारिवारिक मोह मुझे बहुत दुःख दे रहा है। मैं छोड़ना चाहता हूँ, छोड़ता भी हूँ, कभी-कभी चला भी जाता हूँ परंतु लौटकर फिर आ जाता हूँ। मुझे कोई ऐसी युक्ति बतलाइये कि हमेशा के लिए मैं इस बंधन से छूट जाऊँ।" मैंने उन्हें एक युक्ति बतलायी। गणेश जी के मन में बात बैठ गयी।

दूसरे दिन जब मैं एक कानूनगो (राजस्व विभाग के अधिकारी) साहब के निवास-स्थान पर गया तो ज्ञात हुआ कि गणेश जी बहुत बीमार हो गये हैं और कहते हैं- 'पंडितजी (अखंडानंद जी) मुझे विष पिला दिया है। उसमें कानूनगो साहब को भी सलाह है। अब मैं मर जाऊँगा या पागल हो जाऊँगा।' हम लोग तुरंत उनके घर गये। उन्होंने सब लोगों को बाहर भेजा। मुझसे कहा कि "बस, अब मैं नहीं छोड़ूँगा, परिवार ही मुझे छोड़ देगा।"

दूसरे दिन वे घर से निकल कर गंगातट गये और फिर जिनकी रोटी खाना समाज में निंदित माना जाता था ऐसे विजातीय लोगों की बस्ती से भिक्षा ली और भोजन किया। दो-तीन

दिन में यह बात बाजार में, घर में फैल गयी और लोग कहने लगे कि 'वे भ्रष्ट हो गये।' एक दिन वे अपने घर में प्रवेश करने लगे तो उनकी पत्नी कमरे में जा छिपी। उनकी माता जी ने आकर डाँटा: "अब तुम घर में मत घुसो, नहीं तो बाल-बच्चों का विवाह कैसे होगा ?" वे गंगातट पर लौट गये। उनकी माता जी ने मुझसे कहा: "पंडित जी ! अब आप गणेश को कह दीजिये कि घर में कभी न आये, नहीं तो हम लोगों की बदनामी होगी और हम लोग जाति से बाहर कर दिये जायेंगे। बच्चों का विवाह कैसे होगा ?" मैंने उनकी बात गणेश जी को कह दी और वे मिट्टी की एक हँडिया लेकर वहाँ से निकल गये तथा भिक्षा माँगकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

वे गंगा किनारे विचरते थे। कभी गाँव में, कभी पेड़ों के नीचे रहा करते थे।

जब कभी मुझसे मिलते तो यह दोहा प्रायः बोला करते:

न कुछ हुआ, न है कुछ, ना कुछ होवनहार।

अनुभव का दीदार है, अपना रूप अपार॥

पाया कहे सो बावरा, खोया कहे सो कूर।

पाया खोया कुछ नहीं, ज्यों-का-त्यों भरपूर॥

एक बार गणेश जी अपने प्रति श्रद्धा रखने वाले कुछ गृहस्थों को लेकर आये, मुझे साष्टांग दंडवत् किया और गृहस्थों से बोले: "ये मेरे गुरु हैं। बड़े महात्मा हैं। तुम लोग जूते दूर निकालकर इन्हें साष्टांग प्रणाम करो। आज यहाँ भिक्षा लेने के लिए प्रार्थना करो।" उन्होंने वैसा ही किया।

खरा वेदांत सुनाने के लिए कहा जाने पर उन्होंने विचार सागर का दोहा बोल दिया:

जो सुख नित्य प्रकाश विभु, नाम रूप आधार।

मति न लखे जेहि मति लखे, सो मैं शुद्ध अपार॥

जा कृपालु सर्वज्ञ को, हिय धारत मुनि ध्यान।

ताकों होत उपाधि तें, मो में मिथ्या भान॥

बोध चाहि जाको सुकृति, भजत राम निष्काम।

सो है मेरी आत्मा, काको करूँ प्रणाम॥

गणेशानंद जी को अद्वैत सिद्धांत के सिवाय और कुछ भी भाता नहीं था।

मैं कभी-कभी हँसी में पूछ लेता: "अवधूत जी ! सृष्टि कैसे हुई ?"

हमेशा एक ही उत्तर होता: "सृष्टि बिल्कुल है ही नहीं, कभी हुई ही नहीं, कभी होगी भी नहीं। एक शुद्ध-बुद्ध मुक्त आत्मा ही अद्वितीय ब्रह्म है।"

किसी ने कहा: "अवधूत जी ! चलिये, आज द्वैत-अद्वैत का शास्त्रार्थ हो रहा है। बड़े-बड़े विद्वान इकट्ठे हुए हैं।"

अवधूत जी बोलते:

अद्वैतं केचिद् इच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे।

समं तत्त्वं न विन्दति द्वैताद्वैतविवर्जितम्॥

द्वैत-अद्वैत भी मतवाद ही हैं। जो द्वैत अद्वैत दोनों मतों का प्रकाशक, स्वयं प्रकाश अधिष्ठान है, वही सत्य है, वही आत्मा है।

एक बार उनके पुत्र श्री हरिप्रसाद रस्तोगी धानापुर से वृंदावन आये। अवधूत जी ने उनकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। उन्होंने पिता के लिए दूध का प्रबंध कर दिया। जब अवधूत जी को मालूम पड़ा तो दूध तो बंद ही कर दिया और स्वयं कुछ दिनों के लिए वृंदावन छोड़कर चले गये। उसके बाद परिवार के लोगों ने सम्पर्क रखने का कोई प्रयास नहीं किया।

लोग उनके हाथ जोड़ते तो वे जोर से बोल देते: 'शिवोऽहम्-शिवोऽहम्।'

मृत्युपर्यंत यही बोलते रहे कि 'दृश्य कहाँ है ? देह कहाँ है ?' शरीर में रोग एवं अशक्ति आ जाने पर भी वे यही कहते: 'शिवाऽहम्-शिवाऽहम्'। सत्संगियों ने आग्रह करके पूछा कि "आपको क्या तकलीफ है ?" वे बोलते कि "तकलीफ की सत्ता ही नहीं है।"

किसी ने पूछा: "आपके शरीर का अंतिम संस्कार कैसे किया जाय ?"

उन्होंने कह दिया: "संस्कार, विकार कुछ नहीं, शिवोऽहम्। नाम रूप टूट गये, तत्त्व तो तत्त्व है ही।"

အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့

અનક્રમણિકા

अन्य संतों के साथ मिलन-प्रसंग

पूज्य बापू जी को संतों के प्रति अनोखा प्रेम है, इसलिए तो जहाँ भी पूज्य श्री का सत्संग होता है वहाँ बड़ी संख्या में साधु-संत पहुँच जाते हैं। पूज्य श्री साधनाकाल से ही समय-समय पर सिद्ध महात्माओं, उच्च कोटि के साधु-संतों का समागम करते रहे हैं। उनके साथ हुए वार्तालाप, लीला प्रसंग हमें बहुत कुछ सीख व प्रेरणा दे जाते हैं। प्रस्तुत हैं पूज्य बापू जी की अमृतवाणी से संकलित ऐसे ही कुछ मधुर प्रसंग:

गंगोत्री के नरहरि महाराज

हम घर छोड़कर गये तब एक बार घूमते-घामते पहुँच गये थे गंगोत्री। वह उत्तरकाशी से भी आगे है। उस समय तो पैदल जाना पड़ता था। वहाँ एक नरहरि महाराज थे, वे आत्मज्ञानी थे। मौजी महाराज थे, कटिया में बैठे-बैठे मस्ती से हँसते रहते थे।

कोई उनके यहाँ जाता और बोलता: "महाराज ! आपके दर्शन करने हैं।"

अंदर से प्रश्न पूछते: "कौन है ? जिंदा है कि मर्दा ?"

"महाराज ! जिंदा हूँ।"

"जा साले ! नहीं मिलना है।" ऐसा करते थे।

मैंने पहले ही उनके स्वभाव की जाँच कर ली थी। मैं जब गया तो मैंने भी उनकी कुटिया के द्वार खटखटाये। अंदर से प्रश्न आया: "कौन है ?" मैंने जवाब नहीं दिया।

फिर से प्रश्न आया: "अरे, कौन है ? जिंदा है कि मुर्दा ?"

मैंने कहा: "जिंदा क्यों आयेगा ? मुर्दा ही आता है मुर्दे के पास।" उन्होंने दरवाजा खोला और बोला: "जिंदों को क्या मिलेगा इधर ? यहाँ तो मुर्दों की महफिल होती है महाराज ! आ जाओ यार ! अरे, इधर तो साले जिंदे ही जिंदे आते हैं, परेशान कर देते हैं।"

जिंदा मतलब अहं का जिंदा होना। देह को 'मैं' मानना मतलब जिंदा होना। देह का 'मैं' मर गया तो मुर्दा हो गया।

मैंने कहा: "मुझे गंगोत्री से आगे गोमुख देखने जाना है।"

महाराज: "क्या ? गोमुख से तुम्हें कुछ लेना है ?"

"मुझे कौन देगा और क्या देगा ?"

इस प्रकार हम आत्मज्ञान की चर्चा करते हुए आत्ममस्ती में कई घंटे मस्त रहे।

ऐसे महापुरुष कहीं-कहीं, कभी-कभी, कोई अकेले-दुकेले, विरले ही मिलते हैं। उन्हीं के अस्तित्व से वातावरण में आनंद, शांति, माधुर्य बना रहता है। वे रहते तो हैं कहीं एक स्थान पर लेकिन उस पूरे तीर्थ में उनकी आत्मशांति, आत्ममस्ती का प्रभाव व्याप्त होता है।

अनुक्रमणिका

भूमानंद जी महाराज के साथ

लुणावड़ा (गुजरात) में भूमानंद जी महाराज नाम के संत रहते थे। वे प्रायः मौन ही रखते थे। ब्रिटिश शासन में लुणावड़ा रियासत के राजा उनके चरणों में बैठते थे। महाराज 'ब्रह्मसूत्र' पर उपदेश देते थे। किंतु देखा कि बहुत प्रसिद्धि हो गयी है तो लोक-सम्पर्क से बचने के लिए उन्होंने अपना व्यवहार ही बदल दिया। वे जहाँ पर बैठते वहीं शौचादि करने लगे तो लोग बोलते: "महाराज ! महाराज !! क्या हो गया ?" परंतु वे तो बस चुप ही रहते।

हिन्दुस्तान-विभाजन के समय लुणावड़ा के राजा विदेश चले गये। न्यासियों (ट्रस्टियों) ने भी देखा कि अब तो सारा माल हमारा हो गया है, बाबा को भले कहीं भी रख दो। फिर कभी कहीं तो कभी कहीं उन्हें ले जाते। एक बार उन्होंने बाबा को उठाकर हनुमान जी के मंदिर की देहली पर रख दिया तो महाराज वहीं मैले-कुचैले पड़े रहते।

महाराज के चमत्कारों के बारे में सुनकर सट्टा खेलने वाली कोई माई मुम्बई से आई। उसने बाबा को 10-15 दिन खिचड़ी खिलायी। फिर एक दिन बाबा से पूछा: "बाप जी ! जरा सा कह दो न ! वन या दू (एक या दो) ?"

महाराज को हिला-हिलाकर आँखें खुलवाये और पूछे लेकिन महाराज तो कुछ कहें ही नहीं। आखिर वह माई बोली: "वॉन नॉनसेंस ! ये तो कोई साधु है ?" वह माई साधन भजन करने

वाली साधिका तो थी नहीं, उसने पान में जहर डालकर महाराज को देते हुए कहा: "गुरु जी ! खाओ।"

महाराज बोले: "अच्छा, तू मुझे मारना चाहती है। नॉनसेंस ! मैं नहीं मरने वाला।"

बाबा जी तो पान खा गये परंतु उनको कुछ नहीं हुआ। माई यह चमत्कार देखकर बड़ी प्रभावित हुई। वह भाव में आ गयी और जाने से पहले थोड़े रुपये खर्च करके महाराज के लिए वहीं पास में टीन-शेड लगवाकर गयी।

किसी साधु के द्वारा मुझे (पूज्य बापू जी को) भी पता चला कि ये परमहंस कोटि के महात्मा हैं तो मैं वहाँ गया। साथ में मेरे एक आध्यात्मिक मित्र हरगोविंद पंजाबी भी थे। साधनाकाल के दौरान हम दोनों शहर में किसी आश्रम में कथा सुनने साथ में जाते थे।

शाम को 5-5.30 बजे पहुँचे। देखा तो बाबा की आँखें बंद थीं। इतने में एक नाई आया। उसने हाथ पकड़कर बाबा जी को नज़दीक बैठाया और बाबा जी के बाल काटने आदि की सेवा करके चला गया। रात को कोई ब्राह्मण आया। उसने बाबा जी के लिए खिचड़ी बनायी और किसी सोनी भगत ने स्वामी जी के मुँह में खिचड़ी के कौर डाले। फिर कोई गिलासभर चाय ले आया तो महाराज की पहले की आदत थी लोगों की बाँटने की, तो महाराज वह गिलास दूसरे भक्तों को देने लगे कि "पी लो, पी लो, एक घूँट तुम भी पी लो, चाय है।"

गिलास एक भगत से दूसरे भगत के पास, दूसरे से तीसरे के पास... ऐसे घूमने लगा। मैं भी भगत बनकर बैठा था, मेरे पास भी गिलास आया। अब.....? मैंने सोचा कि 'मैं तो चाय पीता नहीं हूँ, संत का प्रसाद है इसलिए अनादर करना भी ठीक नहीं है।' भगवान ने प्रेरणा दी। मैंने गिलास लेकर सिर पर रखा और उसमें से एक छींटा अहोभाव से कंठकूप पर लगा दिया। उस समय मैंने देखा कि महात्मा दिखते तो हैं पागल जैसे लेकिन उनके अंदर बड़ी सजगता है। उन्होंने मेरी यह हिलचाल देख ली थी। मुझे लगा कि 'हम भी स्वीकार हो ही गये।'

रात के 11 बजे। दूसरे सब तो चले गये और हम भी लेटे तो सही लेकिन अंदर तड़प थी बाबा के साथ बात करने की, उनसे मिलने की। और वे लोगों के सामने तो बात करने वाले भी नहीं थे। आखिर हम भी सो गये, हरगोविंद पंजाबी भी सो गये। नींद आना एक बात है और नाटकर करके सो जाना दूसरी बात है। मैंने सोने का नाटक किया। रात को 11-30 बजे के करीब मैंने देखा कि दो चार सटोरिये आये। बीड़ी सिगरेट लाये थे। बाबा को हिलाकर कहने लगे: "बोलो न बाबा ! मालामाल कर देंगे, भंडारा करेंगे। अरे बोलो, इतने दिनों से आते हैं थोड़ा तो बोलो। नहीं तो तुमको मार डालेंगे।"

उन्होंने कितनी धमकियाँ दीं, कितने प्रलोभन भी दिये लेकिन बाबा के चित्त पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। थोड़ी देर तक सटोरिये जिद करते रहे पर बाबा कुछ नहीं बोले। फिर मैंने थोड़ी करवट बदली तो सटोरिये भाग गये। फिर 1 बजे मैं उठा। मैंने कहा: "महाराज ! जैसी आपकी ईश्वर में स्थिति है वैसी हमारी भी हो जाय।"

बाबा ने आँखें खोलकर मेरे सामने देखा। फिर लेटे-लेटे ही मेरा हाथ पकड़कर उसे अपने सिर पर रख दिया। फिर मेरी अनामिका उँगली पकड़कर एक ऐसी चुटकी लगायी मानो, बिजली का 440 वोल्ट का झटका लगा ! मुझे तुरंत हृदय में उसका असर हुआ। मैं समझ भी गया। अंदर से कुछ भाव बने कि अवस्था की चिंता क्या करना ! फिर मैं सो गया तो स्वप्न में स्वामी जी की और मेरी आपस में बातचीत होने लगी। सुबह उठा तो हरगोविन्द पंजाबी कहने लगे: "वाह भाई वाह ! तुम तो स्वामी जी के साथ बात भी करने लगे !"

मैंने कहा: "मेरे स्वप्न के बारे में तुम्हें कैसे पता चला ?"

पंजाबी: "मुझे स्वप्न में आपको बाबा से जो महसूस हुआ और आपकी उनके साथ स्वप्न में जो बातचीत हुई वह सारा-का-सारा दिखाई दिया।"

मैंने कहा: "यहाँ की मशीनरी (आध्यात्मिक दुनिया) कुछ निराली ही है बाबा ! नहीं तो एक का स्वप्न दूसरे को नहीं दिखता।"

पंजाबी: "आपको तो बहुत मिल गया !"

बाबा की कैसी चेतना थी ! बाहर से मूकवत् और अंदर से उतने ही सजग !

[अनुक्रमणिका](#)

सद्गुरु-मिलन

हमने भगवान को खोजने के लिए खूब दर-दर के चक्कर लगाये। फिर कोई बोले: "अयोध्या में जहाँ बहुत साधु रहते हैं, वहाँ चले जाओ।"

अयोध्या में तो पाँच हजार साधु रहते हैं। अब पाँच हजार साधुओं में से दस-दस साधुओं को एक-एक दिन में मिलें तो डेढ़ साल लग जायेगा। मैंने पाँच हजार साधुओं में से खूब पहुँचे हुए थे उनके नाम खोज लिये तो चार नाम आये। बोले: "बहुत बड़ी उम्र के हैं, पहुँचे हुए हैं, त्यागी हैं।"

मैंने कहा: "चार में से जो सबसे विशेष हों उनके बारे में बताओ।"

तो बताया गया: "वे जो घास-फूस की झोंपड़ी में रहते हैं, लँगोटी पहने रहते हैं, वे बहुत पहुँचे हुए हैं।"

मैं उनके पास गया और कहा: "ईश्वरप्राप्ति के सिवाय मेरे को कुछ नहीं चाहिए।" तो उन्होंने साधन बताया- 12 साल नाभि में धारणा कर जप करो, 12 साल नाभि से ऊपर, 12 साल हृदय में और 12 साल कंठकूप पर.... ऐसे करके 48 साल साधना करनी होगी। मैंने कहा: "मैं तो एक साल भी नहीं रह सकता ईश्वरप्राप्ति के बिना। 48 साल तक यह ये सब साधन मैं नहीं कर पाऊँगा।"

मैं तो वहाँ से चला और जब साँई श्री लीलाशाह जी महाराज बापू के पास गया तो मेरे को 40 दिन में परमात्मा की प्राप्ति हो गयी। कहाँ तो बोले 48 साल के कोर्स (पाठ्यक्रम) के बाद भगवान मिलेंगे और कहाँ 40 दिन में मिल गये !

तो जैसे गुरु होंगे वैसा ही रास्ता दिखायेंगे। मेरे गुरु जी साँई लीलाशाह जी बापू तो समर्थ थे। उन्होंने सत्संग सुना के 40 दिन में ब्राह्मी स्थिति करा दी। बाद में अयोध्या गया तो वही साधु जिसको मैं गुरु बनाने की सोचता था और जिसने 48 साल का कोर्स बताया था उसने पहचाना ही नहीं, वही मेरा सत्कार करने लग गया। बोला: "अच्छा आशाराम जी ! तुम्हारा तो बड़ा नाम है, तुम मेरे को मदद कर सकते हो ?"

उसको पता नहीं कि डेढ़ साल पहले यही लड़का मेरे आगे हाथ जोड़कर उछल-कूद कर रहा था कि 'महाराज ! ईश्वरप्राप्ति करनी है, कृपा कर दो...'। वही आशाराम बापू हो गये।

जब समर्थ गुरु मिल जाते हैं और अपनी तत्परता होती है तो झट से काम हो जाता है। कोई कठिन नहीं है।

अनुक्रमणिका

कानपुर के संत राणा जी के साथ

एक ब्रह्मज्ञानी की गत वास्तव में दूसरे ब्रह्मज्ञानी ही जान सकते हैं। इस बात को पुष्ट करती एक घटना बताते हुए पूज्य बापू जी कहते हैं- मैं घर छोड़कर गया तब 2-3 साल बाद कानपुर में संतों का एक विशाल 'रामायण वेदांत-सम्मेलन' आयोजित हुआ था। उसमें मुझे नैनिताल से गुरु जी ने भेजा था। वहाँ पता चला कि कानपुर में एक ब्रह्मज्ञानी संत हैं, उनका नाम राणा जी है। वे जैसे और साधारण गृहस्थी लोग रहते हैं, ऐसे ही परिवार के साथ रहते थे। हम तो परिवार होते हुए भी फक्कड़शाही से रहते थे। वे बँगले में रहते थे। मेहमान आयें तो उनको खिलाना आदि करते थे लेकिन आत्मा में जगे हुए पुरुष थे। मुझे हुआ कि लोग बाहर से उनको जो कुछ भी मानते हों लेकिन ब्रह्मज्ञानी हैं तो मुझे तो उनसे मिलने जाना चाहिए और हम आपको घर संसार में रहते हुए कैसे यह माल मिल गया ?"

उन्होंने कहा: "मेरी बात छोड़ो, यह कहो कि आपको इतनी छोटी उम्र में यह खजाना कैसे मिल गया ? आप तो छुपे रुस्तम हो ! आपने इतनी ऊँची स्थिति कैसे पायी ?"

मैंने कहा: "वह तो गुरु जी की कृपा है।"

परिचय के लिए मैंने कुछ भी नहीं कहा था। बस, दृष्टिमात्र से परिचय हो गया ! सच में, ब्रह्म गिआनी की गति ब्रह्म गिआनी जानै। (सुखमनी साहिब)

अनुक्रमणिका

वेदांत की डिग्री

कानपुर के संत सम्मेलन में मेरे गुरुजी (भगवत्पाद साँई श्री लीलाशाह जी महाराज) को आमंत्रित किया गया था। किसी कारणवश गुरु जी नहीं जा रहे थे तो प्रतिनिधि के रूप में गुरु जी ने मुझे भेजा। 45 वक्ता थे, उनमें कोई 1008, कोई जगद्गुरु तो कोई फलाना था। मेरे नाम के लिए बोले कि 'ये लीलाशाह जी महाराज की ओर से आये हैं उनके कृपापात्र शिष्य आशाराम जी, अब हमें अमृतवचन सुनायेंगे।' मुझे लगा कि अभी गुरु जी के प्रतिनिधि के रूप में आया हूँ तो इतना सा बोलते हैं, और जब मैं अलग से प्रवचन करने जाऊँगा तब केवल मेरा नाम ही बोलेंगे न ! अपना भी कोई टाइटल (उपाधि) होता तो थोड़ा धमाका होता। विनोद-विनोद में ऐसा मन में संकल्प आ गया।

फिर हमने वेदांताचार्य का टाइटल पाने के लिए ऋषिकेश में एक संस्था है, 'राघवानंद दर्शन महाविद्यालय', उसमें प्रवेश ले लिया।

अभी तो तीन-चार दिन हुए होंगे। मुझे वहाँ एक उच्च कोटि के महापुरुष मिले। मुझे देखकर पूछने लगे: "महाराज जी ! यहाँ कैसे आना हुआ ?"

मैंने कहा: "डिग्री लेने आया हूँ। कानपुर में संत सम्मेलन हुआ था, उसमें बोलते थे कि 'ये वेदांताचार्य, ये दर्शनाचार्य, ये वैशेषिकाचार्य, ये षड्दर्शनाचार्य, ये फलाने-फलाने महाराज आपको अमृतवचन सुनायेंगे।' तो मेरे मन में हुआ कि वेदांताचार्य जैसा मेरा भी कोई टाइटल-वाइटल हो तो पढ़े-लिखे लोग थोड़ा ध्यान से सुनेंगे इसलिए थोड़ी मौज आ गयी। वैसे तो आत्मज्ञान के आगे इन उपाधियों का क्या काम !"

फिर तो मेरे इस बबलू मन की बात पर हम खूब हँसे।

आठवाँ दिन हुआ तो हमें जो आचार्य पढ़ा रहे थे, उन्होंने गीता की व्याख्या की, फिर दूसरे विद्यार्थी ने उठकर उसकी व्याख्या की। फिर भी उस श्लोक का अर्थ इतना स्पष्ट और धमाकेदार नहीं हो रहा था। अब मेरे लिए गीता की व्याख्या करना तो दायें हाथ का खेल था। मैं उठा और उस श्लोक की व्याख्या की तो आचार्य मुझसे पूछने लगे: "महाराज जी ! आप वेदांत पर पहले अध्ययन कर चुके हैं क्या ?"

मैंने कहा: "नहीं, मैं यहाँ पहली बार ही वेदांताचार्य की परीक्षा के लिए आया हूँ।"

"ऐसा हो नहीं सकता !"

मैंने कहा: "मैं सच बताता हूँ। मैं स्कूली शिक्षा भी नहीं पढ़ा हूँ पूरी। मैं तो तीसरी कक्षा तक ही पढ़ा हूँ। बाद में संसार से वैराग्य हुआ और गुरु जी के चरणों में चला गया।"

आचार्य तो इतने दंग रह गये, बोले: "गीता की आपने जो व्याख्या की, उसे सुनकर लगता है कि महाराज जी ! आपने इस विषय का अध्ययन किया हुआ है।"

मैंने कहा: "ऐसा नहीं है। यह सब आपकी कृपा है और मेरे गुरु जी का प्रसाद है।"

फिर शाम को मैं गंगा-किनारे स्नान करने गया तो वे उच्च कोटि के महाराज मिले और मेरी ओर देखने लगे। मैं भी उनकी ओर देखने लगा और फिर हम दोनों खूब हँसे। वह हँसी भी

बड़ी गज़ब की थी ! अभी भी उनकी हँसी की स्मृति, उनके नेत्रों की स्मृति करता हूँ तो मेरा हृदय आनंद से गुदगुदियाँ लेने लगता है।

फिर व्यंग्य कसते हुए वे बोले: "अच्छा, 'वेदांताचार्य' का पाठ्यक्रम अभी तक आप पढ़ ही रहे हैं ! कितने दिन हो गये आपको यहाँ पर प्रवेश लिए हुए ?"

मैंने कहा: "आज आठवाँ दिन है।"

वे बोले: "क्या अभी आपको पढ़ना बाकी है ?"

वे अनजान साधु महाराज थे परंतु ऊँची कमाई के धनी थे।

मैंने कहा: "नहीं-नहीं महाराज जी ! पूरा हो गया। मैं तो यह चला।"

वे बोले: "बस, पूरा हो गया !"

मैंने कहा: "हाँ, पूरा हो गया। आज तो उन आचार्य ने और 'शिवानंद डिवाइन लाइफ सोसायटी' के कोई मंडलेश्वर पढ़ रहे थे, उन्होंने जो अर्थ समझाया उससे भी बढ़िया अर्थ सहज स्वाभाविक गुरुकृपा से मेरे से हो गया।"

तब वे महापुरुष बोले: "जिन्होंने परमात्मा को जान लिया हो उनके लिए दूसरा क्या जानना बाकी रह जाता है ! हमें पहले से ही पता था कि आप यहाँ अधिक समय नहीं टिकेंगे। इसीलिए मुझे हँसी भी आ रही थी।"

मैंने कहा: "यह तो मेरे मन की थोड़ी लीला थी तो मैंने सोचा कि 'अच्छा बेटा ! यह भी करके देख ले तू।' किंतु अब तो मन मान गया है।"

फिर तो हम दोनों खूब हँसे। हमें नहीं बनना है बाबा आचार्य-वाचार्य ! हम जो हैं वहीं ठीक हैं। हमें परमात्म-विश्रान्ति का गुरु जी ने जो प्रसाद दिया है, उसके आगे इन डिग्रीयों का क्या महत्त्व ! संत कबीर जी, नानक जी कहाँ कुछ बनने गये थे ? मीरा कहाँ कुछ बनने गयी थीं ? आप कुछ बनो मत मेरे प्यारे साधक ! जो सदा है उस परमात्मा को, वेदांत-ज्ञान, परमात्म-विश्रान्ति को, अपने सच्चिदानंद स्वभाव को पा लो बस !

अनुक्रमणिका

गंगोत्री के संत चेतनानंद जी

आज से 32-33 साल पहले हम लोग गंगोत्री गये थे। उस जमाने में गंगोत्री में गिने-गिनाये दो चार साधु रहते होंगे, बाकी चिड़िया भी नहीं फटकती, ऐसा सन्नाटा रहता था। बस तो जाती ही नहीं थी गंगोत्री। उत्तरकाशी के बाद थोड़ा सा बस चलती, बाद में पैदल ही जाना पड़ता था। हम लोग पैदल गये थे। चंदीराम थे, एक दूसरा साधक, करसन भाई चौधरी (गुजरात के तत्कालीन राजस्व मंत्री) तथा मैं था और हम लोगों का सामान लादकर चलने वाला मजदूर भी था। इस तरह हम 5 लोग थे। हम गंगोत्री पहुँचे, जहाँ गंगा जी का मंदिर है। तो मंदिर के पहले ही एक ऊँचे कद व लम्बी-लम्बी जटाओं वाले साधु आये और संकेत से हमको कहा: "चलो।"

ले चले और हम लोगों को संकेत किया, 'हाथ पैर धो के भोजन करो।' देखा तो भोजन में गरमागरम सीरा है, पहाड़ी सब्जी है, चावल है, रोटी है। उन्हीं महापुरुष ने बनाया था। हमने भोजन किया, फिर पूछा: "हमको तो पता भी नहीं था कि इधर पहुँचेंगे और हमारा अपना सीधा-सामान था.... आपने हमारे लिए यह भोजन क्यों बनाया ? क्या हुआ था ?"

वे मौनी थे और अच्छी ऊँची अवस्थावाले संत थे। किसी के मन की बात जानना उनके लिए दायें हाथ का खेल था। कई साधु उनके दर्शन करना चाहते थे, मिलना चाहते थे। किसी-किसी को दर्शन होते थे, कड़ियों को नहीं भी होते थे। ऐसे महापुरुष हमारे लिए भोजन बनायें और हमें खुद अपने हाथों से परोस-परोस के खिलायें तो आश्चर्य तो होगा ! मैंने पूछा कि "दूसरा कोई सेवक भी नहीं है सहायता के लिए, आपने यह भोजन....?"

उन्होंने लिखकर बताया कि 'मैं सुबह 11 बजे ध्यान से उठकर भोजन बनाता हूँ। आज चावल साफ करते-करते छः आदमियों के लिए चावल साफ हो गये। सब्जी सँवारते-सँवारते सब्जी भी इतनी ज्यादा हो गयी, फिर आटा गूँथना था तो आटा भी ज्यादा गुँध गया। मैंने सोचा, 'क्या पता (परमात्मा) किसके लिए बनवा रहा है !'

देखो, महापुरुषों का अपने शरीर पर, मन पर ममत्व नहीं होता। शरीर और मन को जो चलाने वाला परम सत्त्व है उस पर ही ममत्व होता है। यह महापुरुषों का महापुरुषत्व है !

उन्होंने लिखा: "भोजन बनकर तैयार कर लिया तो मैंने सोचा कि 'किनके लिए बनवाया है ?' बाहर आया तो पाँच लोग और छठा मैं। मैंने देखा कि तुम्हारे लिए ही बनवाया है उसने।"

उन्होंने मौन रखा था। मैं प्रश्न करता और वे लिखकर जवाब देते थे। थोड़े ही प्रश्नोत्तर में हमारी आत्मीयता हो गयी। मैंने कहा: "लिखने में समय जाता है, हम मौन खोलकर बात करें ? आपको अभी क्या घाटा है बोलने में ?"

उन्होंने मौन खोल दिया। कोई रुपयों के बल से अथवा किसी प्रभाव से उनका मौन खुलवा ले उनमें से नहीं थे वे लेकिन मेरे प्रति उनका इतना सद्भाव स्नेह हो गया कि मौन खोलकर बात करने लगे। मैंने नाम पूछा तो चेतनानंद बताया। उनकी अंतर्यामी स्थिति थी। उनके लिए भूत-भविष्य, वर्तमान तीन काल नहीं थे। जो सदा है, जिसकी सत्ता से सब परिवर्तित होता है, बरतता है वे उसमें स्थित महापुरुष थे।

मैंने कहा: "आपने मेरे लिए भोजन कैसे बना लिया ? मेरा तो आपसे परिचय भी नहीं था और अभी तो मैंने कोई साधुवेश भी धारण नहीं किया है। अभी तो गुरु जी ने भेज दिया है संसार में।"

वे बोले: "बाहर से तुम संसारी दिखते हो।" फिर मेरे को पिछले जन्मों की साधना या संतत्व की बातें बताने लगे। मेरी पूर्वकाल की साधना के बारे में बोलने लगे।तो वह कौन है जो उच्च कोटि के संत से मेरे जाने से पहले प्रेरणा करके भोजन बनवा लेता है। वह कैसा है ? कितना ख्याल रखता है ! मैं अपना बल लगाकर अथवा शिष्यों का प्रभाव दिखा के भी उन

महापुरुष से भोजन नहीं बनवा सकता था। लेकिन परमात्मा ने उन महापुरुष को कैसे प्रेरित किया कि उन्होंने मेरे लिए, मेरे शिष्यों और मजदूर के लिए स्वयं भोजन बनाया और खुद ही हाथ से परोसकर हम लोगों को खिलाया। वह कैसा सुहृद है !

कैसा है विश्वनियंता ! वह मेरा कैसा ध्यान रखता है ! कैसा दीनबंधु है ! कैसा प्राणिमात्र का हितैषी है ! कैसा परम सुहृद है !

अनुक्रमणिका

चीलवासा के योगी को बतायी योग की अवस्था

पूज्य बापू जी जब आबू की गुफा में रहते थे, उन दिनों का संस्मरण बताते हैं-

एक बार मैं गंगोत्री से आगे गोमुख गया था, जहाँ से गंगा जी छोटी सी धारा में निकलती थी। कोई-कोई विरले ही वहाँ तक पहुँच सकते हैं। बीच रास्ते में चीलवासा आता है। वहाँ पर चारों ओर हिमालय की ठंडी बर्फ-ही-बर्फ ! बर्फ पर ही चलो, बर्फ ही खाओ, बर्फ ही पियो। वहाँ किसी साधु महाराज का छोटा सा आश्रम था। आश्रम में उनके एक नवयोगी साधु ध्यान में बैठे थे तो उनका शरीर थोड़ा हिल रहा था।

मैंने आश्रम के उन मुखिया को बताया: "यहाँ जो आपके साधु साधना करने बैठे हैं, उन्हें जरा बता देना कि ध्यान करते-करते उनकी कुंडलिनी शक्ति जागृत होने की अवस्था आयी है, अतः उसे रोकें नहीं, अभी और आगे होने दें।"

मेरी बात सुनकर योगी महाराज हाथा जोड़ी करने लगे: "महाराज ! आप तो दूर से ही पहचान गये कि उनकी योग क्या स्थिति है। कृप्या आप यहीं रहिये।"

जब वे ध्यान करने वाले योगी उठे तो मैंने उनसे कहा: "अभी तुम्हारी ऐसी-ऐसी स्थिति है और आगे तुम इस प्रकार करना..."।

इस तरह उन्हें आगे की यौगिक यात्रा के बारे में मार्गदर्शन दे दिया। अरे, फिर तो वे दोनों मुझे खूब अनुनय-विनय करने लगे कि 'आप यहीं रहें।'

मैंने कहा: "आप लोग तो हिमालय में रहते हैं तो फिर...?"

योगी साधु ने कहा: "स्वामी जी ! मुझे कोई गुरु नहीं मिले। ध्यान में ऐसा-ऐसा होता है तब क्या करना चाहिए मुझे आज तक किसी ने नहीं बताया। महाराज जी ! आज आपने मुझे बता दिया। आप कहाँ से आये हैं ?"

उन दिनों मैं आबू की गुफा में रहता था तो मैंने उन्हें मेरे निवास के बारे में बताया।

"बापू जी ! आबू और गिरनार में तो बड़े-बड़े सिद्धयोगी रहते हैं न !"

हमने कहा: "हम तो सोचते थे कि हिमालय में सिद्धयोगी रहते हैं और आप कहते हैं कि गिरनार में सिद्ध रहते हैं।"

सच में, ब्रह्मज्ञान में स्थिति प्राप्त करने के बाद हिमालय के योगी हों या गिरनार के सिद्ध अथवा जपी-तपी योगी, सभी ब्रह्मज्ञान के आगे नतमस्तक हो जाते हैं।

अनुक्रमणिका

गंगा किनारे पर संत-मिलन

एक बार हम गंगा किनारे बालू में एकदम फक्कड़ होकर बैठे थे। वहाँ एक साधु हमारे पास आकर बैठ गये।

मैंने पूछा: "यहाँ कैसे आना हुआ?"

उन्होंने कहा: "मस्तराम बाबा जी दर्शन के लिए आया हूँ।"

"कहाँ से आये हो?"

"स्वामी जी ! इस बारे में क्या बताऊँ ? मेरे तीन आश्रम थे, वे छोड़कर आ गया हूँ।"

"आश्रम क्यों छोड़े ?"

"क्या बताऊँ ? मैं तो दुनिया को सिखाता हूँ योग और दुनिया निगुरी सिखाये मुझे भोग। मैं तो उसे सिखाता हूँ त्याग और वह मुझे सिखाती है राग। आखिर कब तक ऐसे संसार में पड़ा रहूँगा ? इसलिए छोड़कर आ गया।"

मुझे उन साधु के प्रति बड़ा आदर हुआ। उनकी बात में सच्चाई और ईमानदारी का स्वर था। आज तक मुझे उनकी बात याद है।

अनुक्रमणिका

गंगागिरीजी महाराज

उत्तरकाशी में गंगागिरी जी महाराज नाम के एक संत थे। उनकी उम्र 18 साल थी। मेरे गुरुदेव (भगवत्पाद साँई श्री लीलाशाह जी महाराज) के वे मित्रसंत थे, ऐसा मैंने सुना था। मेरे गुरुदेव के साधनाकाल में क्या-क्या हुआ था - ये सब बातें गुरुदेव से पूछने में मुझे संकोच होता था। मर्यादा होती है न ! इसलिए जिज्ञासावश सब पूछने के लिए मैं गंगागिरीजी महाराज के पास गया और जो कुछ पूछना था वह पूछा।

उन्होंने मुझे एक अनुभव बताया: "यहाँ एक संत रहते थे, उनके पास एक महामंडलेश्वर आये और खूब रोये।

संत ने पूछा: "क्या चाहिए भाई ? क्या कहीं शास्त्रार्थ में परास्त हो गये हो ?"

महामंडलेश्वर: "महाराज ! शास्त्रार्थ में तो न्याय, वैशेषिक, सांख्य पर मेरा पूरा प्रभुत्व है। मैं योग पर भी प्रवचन कर सकता हूँ। मैं जिस वस्तु को सिद्ध करना चाहूँ, उसे सिद्ध करके दिखा सकता हूँ। महाराज ! कहो तो दिन को रात और रात को दिन साबित कर दूँ। द्वैत को अद्वैत और अद्वैत को द्वैत साबित कर दूँ। साकार वाले के आगे निराकार की महत्ता साबित कर दूँ और निराकार वाले के आगे साकार की श्रेष्ठता सिद्ध कर दूँ।"

"फिर क्यों रोते हो ? क्या पैसों की कमी है?"

"महाराज ! पैसे तो.... इतने पैसे हो सकते हैं कि मैं रुपये की नोट बिछाते-बिछाते हरिद्वार और ऋषिकेश के अपने आश्रमों से पैदल चलूँ तो सड़क खूट जायेगी पर नोट नहीं खूटेंगे।"

"तो क्या शिष्य कम हो गये या किसी शिष्य ने बेवफाई की ?"

"महाराज ! शिष्य तो बेचारे ऐसे हैं कि मेरे लिए पलकें बिछाये रहते हैं। मैं ऋषिकेश से यहाँ (उत्तरकाशी) तक पैदल चलना चाहूँ तो दोनों तरफ शिष्य लेटकर अपने बाल बिछा दें और उन पर पैर रखते-रखते मैं यहाँ तक पहुँच सकता हूँ, इतने धैर्यवाले व समर्पित होने वाले शिष्य हैं।"

"फिर क्या कमी है?"

"महाराज ! उस अमृत-तत्त्व का, उस अव्यक्त तत्त्व का अभी तक अनुभव नहीं हुआ। लोगों की नजर में तो मैं 1008 महामंडलेश्वर हूँ पर यहाँ (आत्मज्ञान में) शून्य हूँ। भारत में कई जगह मेरे आश्रम हैं किंतु....."

इतनी यश-प्रतिष्ठा होने के बावजूद भी अपनी कमी दिखती है तो कुछ पुण्याई है। दूसरे की कमी ढूँढे वह संसारी, अपनी कमी ढूँढे वह साधक और अपने पराये का भेद जिसको न दिखे, अभेद दिखे वह संत है।

उस महामंडलेश्वर को संत ने कहा: "गंगनानी नामक गाँव है, उससे भी आगे हिमालय से कुछ दूर अब आप एक झोंपड़ी बनाओ 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा तत्त्वज्ञान के विषय में जितना सुना है, माना है उसे जानने के लिए एकांतवास, अल्पाहार, उपनिषदों का विचार व आत्मचिंतन करो। शिष्यों को मत बताना कि आप कहा हैं। नहीं तो एक आयेगा, दूसरा आयेगा..... गिड़गिड़ायेंगे, कुछ न कुछ समस्या बतायेंगे, प्रीति व्यक्त करेंगे और ईश्वर के मार्ग से आपको नीचे ले जायेंगे। इन्द्रियों में जीने वाले व्यक्तियों के संग में आप आयेंगे तो वे आपको घुमा-फिराकर उन्हीं हलकी बातों में ले आयेंगे, उनसे पार की बात में नहीं ले जायेंगे।"

वे एक साल के लिए सचमुच लग गये तो आत्मसुख पाकर ब्रह्मज्ञानी बन गये। सारे विश्व का राज्य देकर भी यदि आत्मज्ञान में निष्ठा, आत्मा की अनुभूति हो जाती है तो सौदा सस्ता है। और सब कुछ पाकर भी यदि उस अव्यक्त को पीठ देते हो तो समझ लेना कि आप अपने साथ बड़ा अनर्थ कर रहे हो।"

[अनुक्रमणिका](#)

मुसलमान महिला फकीर

एक मुसलमान माई फकीर थी। वह डीसा (गुजरात) में रहती थी और एक बड़ा सा गाउन पहनती थी। नहाती भी नहीं थी।

वह माई शिवलाल काका (बापू जी के शिष्य) के होटल के सामने पड़ी रहती थी। कोई कुछ दे जाये तो कुत्ते भी खायें, वह भी खाये, ऐसी बाई थी। वह लगती तो दिखने में पगली जैसी थी लेकिन आध्यात्मिक जगत में बड़ी पहुँची हुई थी।

मैं डीसा में रहता था तब शिवलाल काका का दोस्त टेकू भाई रात को मेरे पास आया। वह जरा श्रद्धा-भक्तिवाला था, तो सत्संग की बात करते-करते उसको ध्यान-ध्यान में कुछ अच्छा लगा तो देर रात हो गयी, डेढ़ बज गया होगा। वह घर की ओर रवाना हुआ तो फुटपाथ पर पड़ी वह बाई उससे कहने लगी: "ऐ ! इधर आ साले ! फकीर के पास से माल मारकर जाता है। गुरु जी ने तुझे खजाना दिया है। अब बीड़ी तो पिला उस्ताद !" उसने हमारे और टेकू के बीच की बात थोड़ी-बहुत कह दी।

सुबह टेकू भाई आया: "साँई ! वह मुसलमान बाई जो पगली-पगली लगती है, उसने अपनी बातें ऐसे-ऐसे बतायीं। आपके और मेरे बीच की बातें उस माई को कैसे पता चली ?"

तो मुझे लगा कि यह बाई कोई सिद्धात्मा है। अब मैं शहर जाऊँगा तो भीड़ हो जायेगी। बाई को यहाँ कैसे लायें ? क्या करें ?' वह बात पूरी हो गयी। आधा घंटा भी नहीं गुजरा। टेकू भागा-भागा आया कि "वह बाई अपना बोरिया-बिस्तर लेकर अपने आश्रम के नज़दीक नीम के पेड़ के पास आकर बैठ गयी है।"

मैंने कहा: "चलो, चलकर देखते हैं।"

मुझे देखते ही उसने सांकेतिक भाषा में बोला: "साहेब बन गया है.... हाँ साहेब ! जिन्नात छोड़ के साहेब बना है।"

मैं उसकी सांकेतिक भाषा समझ गया। वह कह रही थी कि 'पत्नी को छोड़कर आया है और आत्मज्ञान को पा लिया है।' मैं उस समय ऐसे रहता था कि किसी को पता न चले कि मैं शादीशुदा हूँ अथवा अहमदाबाद का हूँ। एकांत में रहना था, अज्ञात रहना था। उसने बोल दिया जिन्नात (पत्नी) छोड़कर आया है तो मेरा मुँह जरा सिकुड़ गया।

तो उसने पलटी मार दी: "साहेब जिन्नात छोड़ के..... साहेब का जिन्नात हम हैं।" ऐसा करके मेरे भक्तों के मन को आया गया (धुधलेपन) मैं डाल के उसने मुझे संतुष्ट कर दिया।

ठीकरों में, कुत्तों के साथ बैठकर खाती थी फिर भी कैसी थी उसकी आत्मनिष्ठा !

जिन्हें आत्मज्ञान हो गया है उनकी शुद्धस्वरूप ईश्वर में स्थिति हो जाती है। फिर उन्हें अशुद्ध देह का आकर्षण नहीं रहता, अहं नहीं रहता। उनके लिए नियम-पालन करना अनिवार्य नहीं होता है। फिर वे नहायें तो क्या और न नहायें तो भी क्या ? कुत्तों के साथ बैठकर खायें तो क्या और सोने-चाँदी के बर्तनों में खायें तो क्या ? यह सब आत्मनिष्ठा की बलिहारी है !

[अनुक्रमणिका](#)

एक मिनट में हजारों को ब्रह्मसुख की झलकें

मैं घर पर था तब मैंने एक सच्चे संत की कथा में एक बात सुनी थी। उन्होंने कहा था: "अगर योगी, ब्रह्मज्ञानी संत चाहें तो अपने ब्रह्मसुख की झलक एक मिनट के अंदर हजारों लोगों को एक साथ करा सकते हैं, परमात्मा के आनंद का स्वाद चखा सकते हैं।

यह बात मेरे हृदय में गहरी उतर गयी। जब घर छोड़कर एकांत में साधना करने के लिए गया तब मुझे यह बात याद आयी और मेरे मन में प्रश्न उठा: "यह कैसे हो सकता है....। अगर एक योगी योगबल से हजारों लोगों के अंतःकरण को अपना अनुभव चखाने के लिए सूक्ष्म शरीर से जाये-आये, जाय-आये.... तो मान लो कि आधा मिनट भी एक व्यक्ति के पास आने-जाने में लगे फिर भी हजार व्यक्तियों के लिए 500 मिनट तो चाहिए और उन महापुरुष ने तो एक मिनट में हजारों को अनुभव कराने की बात कही है।"

जो कुंडलिनी योग के जानकार थे, उनसे थोड़ी विद्या जानकर मैं 40 दिन के लिए एक कमरे में बंद हो गया। मैंने संकल्प लिया कि 'यह विद्या मुझे सिद्ध करनी ही है।' उन दिनों मैं मैंने पूर्ण मौन रखा। भूख लगने पर थोड़ा दूध लेता था। बाकी समय मैं उसी प्रयोग को सार्थक करने में लगा रहता। 37वें दिन परिणाम सामने आया। फिर 40वें दिन मैं जब बाहर आया तो सामने जो थोड़े-बहुत लोग बैठे थे, उन पर मैंने दृष्टिमात्र से यह प्रयोग किया तो उन्हें एक झलक का अनुभव हुआ। फिर धीरे-धीरे 50-100 लोगों पर और अब हजारों-हजारों पर एक साथ यह प्रयोग होता है तथा सभी का हृदय गद्गद होकर परमात्म-शांति, आनंद एवं माधुर्य का अनुभव करता है।

अनुक्रमणिका

पवनाहारी बाबा

एक ऐसे साधु से मैं मिला था जो एक पेड़ पर ही रहते थे। उन्होंने हरिद्वार में सप्तसरोवर की झाड़ियों में एक पेड़ पर 15-20 फीट ऊँची दो डालियों के बीच घास-फूस की छोटी सी कुटिया बनायी थी। उसमें ही वे हवा पीकर रहते थे। पानी भी गंगाजल ही पीते होंगे थोड़ा बहुत। इसलिए लोग उन्हें पवनाहारी बाबा के नाम से पहचानते थे।

काकमुद्रा के अभ्यास से वायु पीकर भी रहा जा सकता है। उसमें जीभ की नोक गोल घुमा दी जाती है और कौए की चोंच की नाई। फिर घूँट भर-भर के हवा पीयी जाती है, जिससे भूख-प्यास शांत हो जाती है। यदि इस मुद्रा का रोज अभ्यास करें तो वर्षों तक बिना कुछ खाये जी सकते हैं। मेरे गुरु जी जानते थे यह मुद्रा। मैं भी थोड़ा बहुत गुरुजी से इसके बारे में जाना है लेकिन इसका उपयोग नहीं किया।

एक बार मेरे मित्रसंत नारायण बापू भी उनसे (पवनाहारी बाबा से) मिलने गये थे। हमें पत चला तो हम भी गये। हमने कहा: "महाराज ! दर्शन दो, दर्शन दो। दूर से आया हूँ।" ऐसा 2-

5 मिनट बोलकर 20-30 मिनट इंतजार किया। फिर से आवाज लगाकर देखा परंतु महाराज नीचे उतरे ही नहीं।

दूसरे दिन सुबह हमने नियम करते-करते सोचा कि 'आज फिर से उन्हीं महाराज के पास जायेंगे।' अनुरोध करके देख लिया पर वे तो आये नहीं। फिर हमने सोचा, 'अब आत्मबल का उपयोग करना पड़ेगा।' हमने ऊपर दृष्टि डाल के संकल्प किया कि 'जल्दी नीचे उतर आयें। ॐ.... ॐ..... ॐ.....' तुरंत अंदर से आवाज आयी: 'ॐ....' फिर तो वे साधु फटाक से नीचे आकर मेरे सामने बैठ गये। वे 136 साल के थे, बिल्कुल पक्का याद है मुझे। हमारी बातचीत भी हुई। 2-3 दिन के बाद हमने कहा: "बाबा ! आपकी नेत्रज्योति कमजोर है।"

बोले: "हाँ, ऐसा है।" तो मैंने डॉक्टर बुलाकर थोड़ी सेवा करवा दी।"

अनुक्रमणिका

नर्मदा किनारे के संत

एक बार नर्मदा किनारे एक संत मिले। हमने उनसे पूछा: "आप बाबा जी कैसे बने ? संन्यासी कैसे बने ?"

संत बोले: "मैं एक अहीर का लड़का था। गाय-भैंसे चराता था। सोचा कि 'निगुरे होकर क्या रहना, कोई गुरु कर लूँ।'

मैं गुरु के पास गया तो उन्होंने कहा: "चल रे ग्वाले ! तू क्या मंत्र जपेगा ! तू क्या साधना करेगा आत्मज्ञान की ! मैं तो केवल ब्राह्मण को ही दीक्षा देता हूँ।"

"बाबा जी ! मैं ब्राह्मण का बेटा तो नहीं हूँ लेकिन दया करो।"

"दया करूँगा लेकिन पहले तू गीता का एक श्लोक पक्का (याद) करके दिखा। मैं भी तो देखूँ कि भक्ति कर सकता है या नहीं।"

मैंने गीता का श्लोक पक्का किया तो वे बोले: "पूरा अध्याय पक्का कर।"

मैं पूरा अध्याय पक्का करके गया तो बोले: "सारे अध्याय पक्के कर।"

मैंने सभी अध्याय कंठस्थ किये, फिर भी उन महाराज का मन माना नहीं। मुझसे कहा: "हमारा विचार नहीं हो रहा है तुम्हें दीक्षा देने का।"

मैं तो जंगल में आकर बहुत रोया कि 'क्या मैं इतना अभागा हूँ कि निगुरा पैदा हुआ और निगुरा ही मर जाऊँगा ? हे भगवान ! मौत आकर मार दे उससे पहले गुरु के ज्ञान से मेरा अहं मर जाय। मेरे और परमात्मा के बीच जो पर्दा है वह हट जाय ऐसी कृपा करने वाले कोई सदगुरु मुझे नहीं मिले, मैं कितना अभागा हूँ ! गुरु ने कहा कि "गीता कंठस्थ करके आ ।" तो मैं गीता कंठस्थ करके गया फिर भी गुरु के मन में मुझे दीक्षा देने का विचार नहीं आया....'

रोते-रोते मैं बेहोश जैसा हो गया। निद्रा-तन्द्रा आ गयी, मुझे पता ही नहीं चला। फिर जब मैं उठा तो देखा कि आकाश में पद्मासन बाँधे हुए एक दंडी संन्यासी जा रहे थे। मैं तो उन्हें

देखता ही रहा। बड़ी शांति मिली, बहुत आनंद आया। मन में हुआ, 'हे भगवान ! तेरी लीला अपरम्पार है !'

वे तो अलोप हो गये। दूसरे दिन मैं नाश्ता करके घर से बाहर निकला। गायें आगे थीं और मैं पीछे। तब अचानक वे ही संन्यासी मेरे सामने आये और बोले: "तुझे गुरु करने हैं न ? चल मैं तेरा गुरु हूँ।" मुझे जंगल में ले गये। फिर मंत्रदीक्षा देकर अदृश्य हो गये। अब मैं नर्मदा किनारे गुरुमंत्र का अनुष्ठान करता हूँ, साधना करता हूँ।"

गजब की ईश्वरीय सृष्टि की व्यवस्था ! साधक की ईश्वरप्राप्ति की तीव्र उत्कंठा होती है तो उसे अदृश्य रूप से विचरण करने वाले सदगुरु के द्वारा भी मंत्रदीक्षा मिल जाती है। (सचमुच, वे लोग तो महाधनभागी हैं, जिनको सदगुरुरूप में कोई जागृत महापुरुष, कोई अहैतुकी करुणावान ब्रह्मज्ञानी संत मिल गये हैं और जिनको ऐसे महापुरुषों से सहज में ही भगवन्नाम की दीक्षा मिल गयी है।)

अनुक्रमणिका

स्वामी शिवानंद जी

शिवानंदजी महाराज ने 40 साल गुफा में तप किया। वटवृक्ष की जड़ों को पकड़कर गुफा में उतरना पड़ता था, ऐसी कंदरा में जाकर तपस्या करते थे। मेरे हाथ में उनकी कोई किताब आ गयी तो मैंने अपने साधकों से कहा: "उनके दर्शन करना।"

साधक गये, उनसे मिले और कहा: "आशाराम जी बापू ने हमको भेजा है।" आश्रम का सत्साहित्य आदि उनको दिये।

उन्होंने एक किताब देखी। उसमें फोटो देख के तथा लेख पढ़कर बोले: "इतनी छोटी उम्र में इतनी ऊँचाई तक पहुँच गये ! मैं 7 साल तक परिश्रम किया, उसके बाद मुझे कुछ जानने को मिला और इन्होंने इतनी छोटी उम्र में इतने बच्चे-बच्चियों को भी रंग डाला !"

उनके शरीर की स्थिति ऐसी थी कि ज्यादा दिन तक शरीर टिक नहीं सकता था। खूब कफ हो जाता था। मैं उस समय हिमालय में था। उन्होंने कहा: "मैं अब यह छोड़कर जाऊँगा लेकिन एक बार आशाराम बापू के दर्शन करने के बाद ही शरीर छोड़ूँगा।"

वे सत्य संकल्प महापुरुष थे। गुरुपूनम पर उनका एक शिष्य उन्हें अहमदाबाद आश्रम में लेकर आया। वे चल भी नहीं सकते थे, उस समय उनकी उम्र 98 साल थी। वे सत्संग में बोलते तो ऐसा बोलते कि बोलते समय स्वयं भावविभोर होकर अश्रुपात करते। जाते-जाते उनके अंगद शिष्य को कहते गये: "देख, मैं तो चला जाऊँगा लेकिन तुझे एक सुयोग्य गुरु देकर जाता हूँ।"

तब से उनका वह शिष्य अपने यहाँ आता है और इस स्थान (अहमदाबाद आश्रम) को अपने गुरुस्थान के समान ही प्रेम करता है।

अनुक्रमणिका

संतों के सदगुण ले लो

ईश्वरप्राप्ति के बाद जब हम अहमदाबाद में आये और मोक्ष कुटीर बनाया, तब पड़ोस में एक महाराज रहते थे। मेरे पास बहुत लोग आते थे, यह देखकर उन्हें ईर्ष्या के कारण तकलीफ होती थी। वे अपशब्द बोलते थे तो उन्हें अशांति हो जाती थी, रात्रि को उन्हें नींद भी नहीं आती थी।

फिर वे अपने चेलों को भेजते थे कि "आशाराम को बुलाओ।" मैं शिवलाल काका को साथ लेकर उनके पास जाता। काका को कहता था कि "आप महाराज के सिर पर मालिश करो और मैं पैरों की मालिश करता हूँ।" मालिश के कारण उन्हें नींद आ जाती, वे सुख से सो जाते थे। फिर कभी मैं नारायण को भेजता कि "महाराज के लिए फूल, फल, मिठाई ले जाओ।"

यह सदगुण मैंने ऋषि दयानंद जी से चुराया था। मैंने सुना था कि ऋषि दयानंद जी का यश देखकर कोई साधु उनको गालियाँ देता था परंतु ऋषि दयानंद जी बदले में उन्हें फल-फूल और मिठाई भेजते थे। तो उनका यह सदगुण मैंने चुरा लिया। इससे मुझे बहुत लाभ हुआ।

वे महाराज जब संसार से विदा हुए, तब भी मैं उनके आश्रम में गया और उनकी अत्येष्टि कैसे करनी चाहिए इस विषय पर उनके भक्तों को मार्गदर्शन दिया तथा व्यवस्था करके अंतिम दर्शन के लिए अर्थी निकलवायी। अर्थी को कंधा भी दिया और उसे अपने आश्रम में भी लाया।

मेरे गुरु जी के भी सदगुण मैंने बहुत चुराये। गुरुजी सत्संग में कहा करते थे कि एक महात्मा रास्ते से जा रहे थे तो कॉलेज के लफंगे लड़कों ने महाराज का खूब मजाक उड़ाया।

दूसरे कुछ अच्छे लड़के महात्मा के पास गये और बोले: "महाराज ! ये लड़के आपका मजाक उड़ा रहे हैं तो आप इन्हें श्राप नहीं देना, इन पर नाराज नहीं होना। आखिर बच्चे हैं न, अक्ल के कच्चे हैं।"

महाराज: "इन्होंने तो मजाक किया परंतु मैंने उसे लिया ही नहीं। मुझे इनका माल पसंद ही नहीं आया तो मैंने लिया ही नहीं।"

उनका यह सदगुण मैंने चुरा लिया तो मेरे लिए भी कभी कोई कुछ बोलता है तो मुझे यह बात याद आती है कि मैं उनका खराब माल क्यों लूँ ?

अनुक्रमणिका

पथिक जी महाराज

पथिक जी महाराज बहुत उच्च कोटि के संत हो गये सप्तसरोवर, हरिद्वार में। हम दोनों की मुलाकात समय-समय पर होती रहती थी। उनके लेख भी गीता प्रेस में छपते थे। एक बार उन्होंने मुझसे कहा: "आप मुझे घाटवाले बाबा के दर्शन करवा दीजिये। आपकी तो उनके साथ बहुत गहरी मित्रता है। मेरी भी मुलाकात करवा दीजिये।"

मैंने कहा: "अच्छा, चलो चलते हैं।"

उन्होंने कहा: "अरे, पहले उनसे समय तो माँग लेते हैं।"

मैंने कहा: "समय माँगने की जरूरत नहीं है। वे तो अपने घर के ही हैं।"

पथिकजी महाराज की मुलाकात करवायी घाटवाले बाबा के साथ। उन्होंने थोड़ी बहुत बातें कीं। बाद में पथिक जी ने मुझसे कहा: "वास्तव में, घाटवाले बाबा बहुत ही उच्च कोटि के महापुरुष हैं।"

पथिकजी महाराज जब ब्रह्मलीन हुए तब हरिद्वार जाकर मैंने उनके भक्तों को आश्वस्त किया तथा उनकी देह को समाधि दी। वहाँ समाधि मंदिर बना। ऐसे उच्च कोटि के संतों के समाधि-स्थल के परमाणु भी इतने दिव्य प्रभावशाली होते हैं कि सालों तक वातावरण में फैलकर लोगों को दिव्य शांति पहुँचाते हैं।

[अनुक्रमणिका](#)

श्री आनंदमयी माँ

इंदिरा गाँधी की गुरु माँ आनंदमयी को संतों से बड़ा प्रेम था। वे भले प्रधानमंत्री से पूजित होती थीं किंतु स्वयं संतों को पूजकर आनंदित होती थीं। श्री अखंडानंद जी महाराज सत्संग करते थे तो वे उनके चरणों में बैठकर सत्संग सुनती थीं। आनंदमयी माँ अहमदाबाद आश्रम में आयी थीं। मैं भी उनके आश्रम में आता-जाता रहा। मैं उनके पास गया तो लोगों ने उन्हें बताया कि "ये आशाराम जी हैं।"

'पिता जी, पिता जी' बोलती थीं। उनके उम्र के आगे तो हम उनके बेटे जैसे थे किंतु वे किसी भी पुरुष को 'पिता जी' बोलती थीं। मैंने कहा: "माता जी ! यह अपना आश्रम है।"

उन्होंने वहाँ खड़े लोगों की ओर इशारा करके मुझसे पूछा कि "ये कौन हैं ?"

मैंने कहा: "साधक हैं।"

तो वे बंगाली में बोलीं- "इतना साधक.... साधक !"

उनका शिष्य बोला: "ये सब महाराज (पूज्य बापू जी) के भक्त हैं।"

[अनुक्रमणिका](#)

बाबा जी माँ की बात मान गये....

हरि बाबा बड़े उच्च कोटि के संत थे एवं माँ आनंदमयी के समकालीन थे। वे एक बार बहुत बीमार पड़ गये थे। इस घटना के बारे उनके डॉक्टर ने लिखा है:

'हरिबाबा का स्वास्थ्य काफी लड़खड़ा गया और मुझे उनकी सेवा का सौभाग्य मिला। उन्हें रक्तचाप की बीमारी भी थी और हृदय की तकलीफ भी थी। उनका कष्ट इतना बढ़ गया था कि नाड़ी भी हाथ में नहीं आ रही थी। मैंने आनंदमयी माँ को फोन किया कि "माँ ! अब बाबा जी

हमारे बीच नहीं रहेंगे। 5-10 मिनट के ही मेहमान हैं।" माँ ने कहा: "नहीं-नहीं... तुम 'श्री हनुमत चालीसा' का पाठ कराओ और मैं आती हूँ।"

मैंने सोचा कि 'माँ आकर क्या करेगी ? माँ को आते-आते आधा घंटा लगेगा।' 'श्री हनुमत चालीसा' का पाठ शुरू कराया गया और चिकित्सा विज्ञान के अनुसार हरि बाबा 5-7 मिनट में ही चल बसे। मैं सारा परीक्षण किया। उनकी आँखों की पुतलियाँ देखीं। पल्स (नाड़ी का स्पन्दन) देखी। इसके बाद 'श्री हनुमत चालीसा' करने वालों के आगेवन से कहा कि "अब बाबा जी की विदाई का सामान इकट्ठा करें। मैं अब जाता हूँ।"

घड़ी भर माँ का इंतजार किया। माँ आर्यी बाबा से मिलने। हमने माँ से कहा: "माँ ! बाबा जी नहीं रहे.... चले गये।"

माँ- "नहीं-नहीं.... चले कैसे गये ? मैं मिलूँगी, बात करूँगी।"

मैंने कहा: "माँ ! बाबा जी चले गये हैं।"

माँ- "नहीं, मैं बात करूँगी।"

बाबा जी का शव जिस कमरे में था, माँ उस कमरे में गयीं। अंदर से कुंडा बंद कर लिया। मैं सोचने लगा कि 'कई डिग्रियाँ हैं मेरे पास। मैं भी कई केस देखे हैं। कई अनुभवों से गुजरा हूँ। धूप में बाल सफेद नहीं किये हैं..... अब माँ दरवाजा बंद करके बाबा जी से क्या बात करेगी ?'

मैं घड़ी देखता रहा। 45 मिनट हो गये। माँ ने कुंडा खोला एवं हँसती हुई आर्यीं।

माँ ने कहा: "बाबा जी मेरा आग्रह मान गये हैं। वे अभी नहीं जायेंगे।"

मुझे एक धक्का सा लगा ! वे अभी नहीं जायेंगे ? यह आनंदमयी माँ जैसी हस्ती कह रही हैं ! वे तो जा चुके हैं !

मैंने कहा: "माँ ! बाबा जी तो चले गये हैं।"

माँ- "नहीं-नहीं.... उन्होंने मेरा आग्रह मान लिया है। वे अभी नहीं जायेंगे।"

मैं चकित होकर कमरे में गया तो बाबा जी तकिये का टेका लेकर बैठे-बैठे हँस रहे थे। मेरा विज्ञान तौबा पुकार गया ! मेरा अहं तौबा पुकार गया !

बाबा जी इस प्रकार दिल्ली में रहे। चार महीने बीत गये। फिर बोले: "मुझे काशी जाना है।"

मैंने कहा: "बाबा जी ! आपकी तबीयत काशी जाने के लिए ट्रेन में बैठने के काबिल नहीं है। आप नहीं जा सकते।"

बाबाजी: "नहीं.... हमें जाना है। हमारा समय हो गया।"

माँ ने कहा: "डॉक्टर ! इन्हें रोको मत। इन्हें मैंने 4 महीने तक के लिए ही आग्रह करके रोका था। इन्होंने अपना वचन निभाया है। अब इन्हें मत रोको।"

बाबा जी गये काशी। स्टेशन से उतरे और अपने निवास पर रात के 2 बजे पहुँचे। प्रभात की वेला में वे अपनी नश्वर देह को छोड़कर सदा के लिए अपने शाश्वत रूप में व्याप गये।"

परम सुख देने वाले, शांत, सम्पूर्ण गुणों के निधि, ध्याननिष्ठ, श्रेष्ठ विद्या के आधार, प्रसिद्ध कीर्ति वाले, पृथ्वी पर धर्म की साक्षात् मूर्ति, विश्वविख्यात, समस्त प्राणियों के कल्पवृक्ष, महान संत पूज्य आशाराम जी बापू की वंदना करते हैं।

[अनुक्रमणिका](#)

दादागुरु साँईं श्री लीलाशाह जी महाराज का पूज्य श्री को पत्र

दिनांक: 10 मार्च 1969

प्रिय, प्रिय आशाराम !

विश्वरूप परिवार से खुश-प्रसन्न होओ। तुम्हारा पत्र मिला। समाचार जाना।

जब तक शरीर है तब तक सुख-दुःख, ठंडी-गर्मी, लाभ-हानि, मान-अपमान होते रहते हैं। सत्य वस्तु परमात्मा में जो संसार प्रतीत होता है वह आभास है। कठिनाइयाँ तो आती जाती रहती हैं।

अपने सत्संग-प्रवचन में अत्यधिक सदाचार और वैराग्य की बातें बताना। सांसारिक वस्तुएँ, शरीर इत्यादि हकीकत में विचार-दृष्टि से देखें तो सुंदर नहीं हैं, आनंदमय नहीं हैं, प्रेम करने योग्य नहीं हैं और वे सत्य भी नहीं हैं - ऐसा दृष्टांत देकर साबित करें। जैसे शरीर को देखें तो वह गंदगी और दुःख का थैला है। नाक से रेंट, मुँह से लार, त्वचा से पसीना, गुदा से मल, शिशनेन्द्रिय से मूत्र बहते रहते हैं। उसी प्रकार कानों व आँखों से भी गंदगी निकलती रहती है। वायु शरीर में जाते ही दुषित हो जाती है। अन्न जल सब कफ-पित्त और दूसरी गंदगी में परिणत हो जाते हैं। बीमारी व बुढ़ापे में शरीर को देखें। किसी की मौत हो जाय तो शरीर को देखें। उसी मृत शरीर को कोई कमरे में चार दिन रखकर बाहर निकाले तो कोई वहाँ खड़ा भी नहीं रह सकता। विचार करके देखने से शरीर की पोल खुल जायेगी। दूसरी वस्तुओं की भी ऐसी ही हालत समझनी चाहिए। आम कितना भी अच्छा हो, 3-4 हफ्ते उसे रखोगे तो सड़ जायेगा, बिगड़ जायेगा। इतनी बदबू आयेगी कि हाथ लगाने में घृणा होगी। इस प्रकार के विचार लोगों को अधिक बताना ताकि उनके दिमाग में पड़ी मोह की पर्तें खुल जायें।

नर्मदा तट जाकर 10-15 दिन रह के आना। दो बार स्नान करना। अपने आत्मविचार में, वेदांत ग्रंथ के विचारों में निमग्न रहना। विशेष जब रूबरू मुलाकात होगी तब बतायेंगे।

बस, अब बंद करता हूँ। शिव !

हे भगवान ! सबको सदबुद्धि दो, शक्ति दो, निरोगता दो। सब अपने-अपने कर्तव्य का पालन करें और सुखी रहें।

हरि ॐ शांति.... शांति.....।

लीलाशाह

[अनुक्रमणिका](#)

संत का संग एवं सेवन करें

मनुष्य जीवन की की चरम तथा परम सफलतारूप भगवत्प्राप्ति के लिए प्रमुख साधनों में से एक श्रेष्ठ साधन है - भगवत्प्राप्त महापुरुष का, संत संग एवं उनका सेवन। संग तथा सेवन का अर्थ क्रमशः 'साथ रहना' और 'शारीरिक सेवा' करना भी होता है परंतु भावरहित हृदय से केवल साथ रहने अथवा किन्हीं सांसारिक मनोरथों को मन में रखकर शारीरिक सेवा करने से बहुत ही कम लाभ होता है।

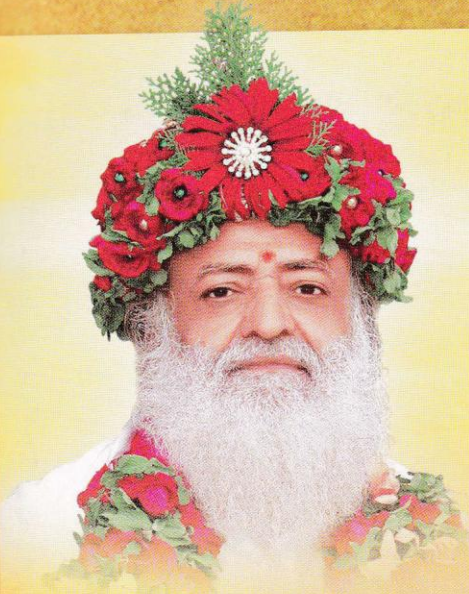
याद रखो, संत का 'संग' वही है जिसमें उन संतपुरुष के विचारों, भावों, उपदेशों तथा उनके द्वारा प्राप्त तत्त्व-विचारों का नित्य मनन होता रहे और 'सेवन' वह जिसमें इन सबका जीवन में विकास हो जाये। इसी के लिए सदा सावधान तथा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

संत का संग और सेवन यदि लौकिक कामना को लेकर किया जाता है तो वह ऐसा ही है जैसे अमूल्य रत्न हीरे को छोड़कर काँच की कामना करना। यही नहीं, वस्तुतः सांसारिक भोग निश्चित ही दुःखपरिणामी और आंतरिक पतन करने वाले हैं इसलिए भोग-कामना की पूर्ति के लिए संत का संग तथा सेवन तो पवित्र अमृत के बदले हलाहल विष माँगने के समान है। यद्यपि संत से विष नहीं मिलता क्योंकि उनमें विष है ही नहीं, तथापि लौकिक भोगों की कामना वाला व्यक्ति परम परमार्थ-धन से तो दीर्घकाल तक वंचित रह ही जाता है। अतएव संत का संग और सेवन केवल भगवत्प्राप्ति के लिए अथवा उन संत की संतुष्टि के लिए ही करो।

संत का संग तथा सेवन आदि भगवत्प्राप्ति के शुद्ध भाव से होगा तो निश्चय ही साधक की स्थिति तथा साधन की गति के अनुसार उसको परमार्थ पथ पर प्रगति के अनुभव होने लगेंगे और वह उत्तरोत्तर आगे बढ़ता चला जायेगा।

अनुक्रमणिका

အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့အံ့



संत-महापुरुषों के दर्शन व शान्तिद्वय से...

परमात्म-तत्त्व से एकाकार हुए संतों की महिमा अपरम्पार है।

✽ भगवान शिव कहते हैं : गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन । 'हे पार्वती ! संत-समागम के समान दूसरा कोई लाभ नहीं है।' (रामायण)

✽ साधुसंग अति पापी को भी पुण्यात्मा बना देता है, अति घृणित को भी श्रेष्ठ बनाने का सामर्थ्य रखता है। श्रेष्ठ पुरुषों की संगति से अज्ञान, अहंकार मिटते हैं। - पूज्य संत श्री आशारामजी बापू

✽ प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः । स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥

'विवेकीजन संग या आसक्ति को ही आत्मा का अच्छेद्य बंधन मानते हैं किंतु वही संग या आसक्ति जब संतों-महापुरुषों के प्रति हो जाती है तो मोक्ष का खुला द्वार बन जाती है।'

(श्रीमद्भागवत : ३.२५.२०)

✽ सतां सङ्गो हि भेषजम् । 'संतजनों की संगति ही (भवरोग की) औषधि है।'

✽ मुदमंगलमय संत-समाज । जिमि जग जंगम तीरथराजू ॥

'संतों का समाज आनंद और कल्याणमय है, जो जगत में चलता-फिरता तीर्थराज है।'

(रामायण)

✽ 'हे महाबुद्धिमान राम ! इस संसार में श्रेष्ठ संत-समागम मनुष्यों को संसार-सागर से उबारने में सर्वत्र विशेष रूप से उपकार करता है।'

(श्री योगवासिष्ठ महारामायण)

✽ महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च । 'महापुरुषों का संग दुर्लभ, अगम्य (अपार महत्त्ववाला) और अमोघ (कभी निष्फल न जानेवाला) है।'

(नारदभक्तिसूत्र : ३९)

✽ साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः । कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥

'साधुओं का दर्शनमात्र भी पुण्यप्रद है क्योंकि साधु-संत साक्षात् तीर्थरूप ही होते हैं। तीर्थ तो कालांतर में फल देता है परंतु साधुओं का संग तो तत्काल फल प्रदान करता है।'

(चाणक्यनीतिदर्पण : १२.८)

✽ खेचरा भूचराः सर्वे ब्रह्मविद्वृष्टिगोचराः । सद्य एव विमुच्यन्ते कोटिजन्मार्जितैरघैः ॥

(वराह उपनिषद् : ४.४४)

ब्रह्मवेत्ता संत की दृष्टि पड़ने पर तो सभी खेचर, भूचर, स्थावर वृक्ष आदि भी कोटि जन्मार्जित पापराशि से मुक्त हो जाते हैं, फिर जिन्होंने संत की शरण ली है उनके मुक्त होने में क्या संदेह है !

संतों की महफिल के

* १९ जून १९७६ को पूज्य संत श्री आशारामजी बापू द्वारा

परम पूज्य लालजी महाराज को मेरा जरा भी प्रणाम नहीं। क्यों भाई, बराबर है न ! प्रणाम तो भिन्नता में होते हैं। (बोध चाहि जाको सुकृति, भजत राम निष्काम। सो मेरो है आतमा, काकूं करूं प्रनाम ॥... मुझसे भिन्न और कोई वस्तु है ही नहीं जिसको मैं प्रणाम करूं। - 'विचार सागर' वेदांत ग्रंथ) और यदि प्रणाम का लालच हो तो मुझसे अलग होकर दिखाओ लालाराम !

आशा + राम = लाला + राम

राम + राम = राम

लाला उड़े, आशा उड़े, रह गये राम के राम ।

- आशाराम

* “पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन... ये ग्यारह-ग्यारह सेवक रहते हैं मेरे पास, फिर और सेवक की क्या जरूरत है ? ये ही तो सेवक हैं।”
- लालजी महाराज

* “साधु ऐसे होने चाहिए, वैसे होने चाहिए... वे साधु ऐसे हैं - वैसे हैं, कोई सच्चे ज्ञानी नहीं हैं... यह सब तू बोलता है तो तू जैसा मानता है कि ज्ञानी ऐसे होने चाहिए, वैसा तू खुद ही बनकर दिखा दे न ! बात ही पूरी हो जाय ।” (श्री घाटवाले बाबा का एक व्यक्ति को जवाब)

* “(मैं तालाबंद मंदिर में कैसे पहुँचा) यह तो मुझे पता नहीं लेकिन प्रभु का ऐसा तीव्र चिंतन हुआ कि मैं नहीं रहा। जब सुबह हुई और पुजारी ने मंदिर खोला तब मुझे भान हुआ कि ‘मैं इधर (बंद मंदिर में) कैसे?’ फिर तो मैं ‘प्रभु...! प्रभु...!!’ करके एक मील तक दौड़ता चला गया।”

- श्री नारायण स्वामी (ताजपरा वाले)

- श्री नारायण स्वामी (ताजपुरा वाले)

* “अरे भाई ! रहने दे न ! अगर ईश्वरप्राप्ति नहीं करनी है तो इतनी सेवा (संत के बैठने से पहले बेंच की सफाई) करने से ही स्वर्ग का सुख चिपकेगा।”

(पूज्य बापूजी के एक मित्रसंत अपने शिष्य से)

* “अरे, कौन है ? जिंदा है कि मुर्दा ?” - गंगोत्री के नरहरि महाराज (कुटिया में से)

पूज्य बापूजी : “जिंदा क्यों आयेगा ? मुर्दा ही आता है मुर्दे के पास ।”

नरहरिजी : “यहाँ तो मुर्दों की महफिल होती है महाराज ! आ जाओ यार !”

* मुसलमान महिला फकीर टेकू भाई से बोली : “इधर आ साले ! फकीर के पास से माल मारकर जाता है । गुरुजी (पूज्य बापूजी) ने तुझे खजाना दे दिया है !”

(इसी पुस्तक से)